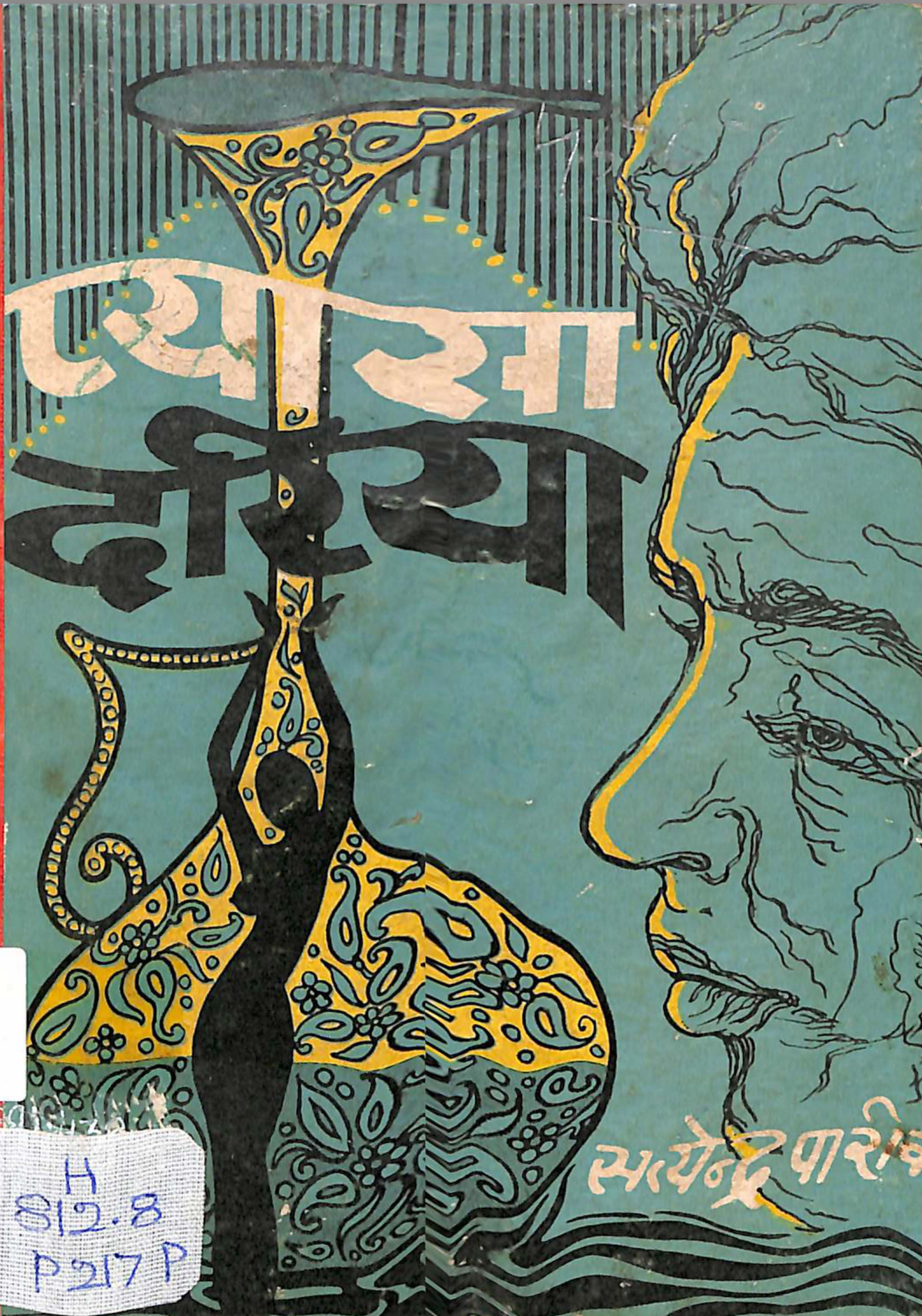

H
812.8
P217P

मिर्ज़ा ग़ालिब के जीवन पर आधारित नाटक

प्यासा दरिया

Pyasa Dariya

सत्येन्द्र पारीक

Satyendra Pareek

● सर्वाधिकार सुरक्षित :

● प्रथम संस्करण : १९७१
प्यासा दरिया (नाटक)

Library IIAS, Shimla
H 812.8 P 217 P
00039868

● प्रकाशक :

जगदीश माथुर
चित्रगुप्त प्रकाशन,
पुरानी मन्डी, अजमेर

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No 39868
Date 21.6.7
H
812.8
P217 P

● मूल्य : चार रुपये

● मुद्रक :

अरुण कुमार सक्सेना
राम प्रिन्टर्स, हाथीभाटा, अजमेर

• यह नाटक

जीवन, उतार-चढ़ाव से परिपूर्ण धूप-छाँह भरा एक ऐसा नाटक है, जो जड़ व चेतन जगत के विराट्-रंगमंच पर नित्य खेला जाता है, जिसके चरित्रों के रूप में विविध मानव-व्यक्तित्व, पशु-पक्षी आदि अपनी-अपनी भूमिकाएँ पूर्ण करते हैं। 'प्यासा-दरिया' नाटक यह ऐसा नाटक है, जिसमें हमें अनेक कड़वी-मीठी अनुभूतियाँ मिलती हैं। कुछ ऐसे व्यक्तित्व भी हैं, जो जीवन की कड़वाहटों को घुटक-घुटककर टूट जाते हैं, बिखर जाते हैं। वह कड़वाहट उनके पोर-पोर में समाकर उनके समूचे अस्तित्व को ही कड़वा बना देती है। यह सब ऐसी कसौटियाँ हैं, जिनसे मनुष्य का व्यक्तित्व परखा जा सकता है।

नाट्य-काव्य में जीवन की धूप-छाँह झलकती है। कवि शिव की भाँति जीवन की समस्त कड़वाहटों का विष पीकर युग को, समाज को अपने अनुभवों और आदर्शों का अमृत प्रदान करता है। मिर्जा ग़ालिब ऐसे ही शायर थे, जो जीवन भर कड़वी-मीठी घूँटें पीते रहे, पर सदैव मुस्कराते रहे। उन्होंने अपनी सारी पीड़ाओं को मस्ती और कहकहों के बीच दबा दिया। पग-पग पर हारते हुए भी वे कभी झुके नहीं।

जीवन परिचय

मिर्जा ग़ालिब का पूरा नाम मिर्जा असदउल्ला खाँ 'ग़ालिब' था। उनका जन्म २७ दिसम्बर, सन् १७९७ में आगरा में हुआ। यह 'मिर्जा नौशा' के नाम से प्रसिद्ध थे। आपने पहले अपना उपनाम 'असद' रखा, पर आगे चलकर इसके स्थान पर 'ग़ालिब' उपनाम रख लिया। पिता का नाम मिर्जा अब्दुलाबेग था, जो अलवर नरेश की सेवा में थे। उनकी

मृत्यु किसी युद्ध में हुई थी। इस समय मिर्जा की आयु केवल पाँच वर्ष थी। पिता का साया सिर से उठ जाने के बाद यह अपने चाचा नसरुल्ला-खाँ के पास रहकर पढ़ने लगे, पर, भाग्य को मिर्जा का यह सहारा भी न सुहाया। सन् १८०६ में चाचा भी चल बसे। फिर मिर्जा का पालन-पोषण ननिहाल में हुआ।

बचपन में इन्हें एक विद्वान मिर्जा मुअज्ज़म ने शिक्षा दी। १४ वर्ष की आयु में एक दूसरा शिक्षक रखा गया। ग़ालिब इनसे लगभग दो वर्ष पढ़े। १३ वर्ष की आयु में इनका विवाह शहजादए गुलफ़ाम नवाब इलाही बख्श की बेटी उमराव से हो गया। दिल्ली की गली कासिमजान में वे उमराव बेगम को ब्याहने गए। उनका अधिकांश जीवन वहीं व्यतीत हुआ था। उमराव से मिर्जा की बहुत नोक-झोंक चलती थी। बेगम रोज़ा-नमाज़ की पूरी पाबन्द और परहेज़गार थी। मिर्जा इस बात पर उसे 'हज़रत मूसा की बहिन' कहकर चिढ़ाया करते थे। जब ज़्यादा परे-शान हो जाते तो खीझकर कहने लगते।

"मेरा तो नाक में दम कर दिया।"

इनका दाम्पत्य-जीवन सुखी नहीं कहा जा सकता। इनके कोई भी सन्तान नहीं थी। यही दुःख दोनों के बीच सदा बना रहा। इसके अतिरिक्त घर की आर्थिक स्थिति भी ठीक नहीं थी। खाने-पीने तक का सामान उधार आया करता था। सदा यह किराए के मकानों में ही रहे। एक बार एक मकान किराए के लिए देखने गए। बाहर की बैठक तो स्वयं मिर्जा ने देखकर पसन्द करली, किन्तु ज़नानखाना पसन्द करना उन्होंने उचित नहीं समझा।:इसके लिए उन्होने बेगम को ही भेजा। जब बेगम मकान देखकर लौटी तो मिर्जा ने पूछा—

"क्यों, घर पसन्द आया?"

बेगम बोली—"उसमें तो लोग बला बतलाते हैं।"

मिर्जा एक क्षण चुप रहे और मुस्कराए। तभी उन्हें शरारत सूझ पड़ी। छेड़ने के इरादे से बोले—

"क्या दुनियाँ में आपसे बढ़कर भी कोई बला है ?"

बेगम का चेहरा तमतमा उठा।

बेगम की खीझ की चिन्ता किए बिना ही मिर्जा उन्हें छेड़ते रहते। वे पिछले पहर रोज़ाना घूमने जाया करते थे। एक दिन गोधूली के बाद जब वे घूमकर घर लौटे तो उमराव बेगम अस्र (गोधूली वेला) की नमाज़ पढ़ रही थी, साथ ही बाक़रअली की बहू जमानी बेगम (बुग्गा बेगम) भी उसी तख़्त पर थी। जब उन्होंने सलाम फेरा तो मिर्जा को छेड़ की सूझी और बोले—

'वाह वा ! खूब ! बहू को भी अपना-सा कर लिया। कम्हारी बूँट का कीड़ा अपने घर ले जाती है तो चालीस दिन में उसे अपना-सा करके निकाल देती है।"

और मिर्जा "हो-हो" कर हँस दिए।

जागीर के बदले मिर्जा को जो पैंशन मिलती थी, वह सन् १८२६ में बन्द हो गई। उसके लिए वे कलकत्ता भी गए। दो वर्ष तक प्रयत्न करने पर भी उन्हें सफलता नहीं मिल पाई। निराश हो लौट पड़े। लौटते समय बनारस और लखनऊ होते हुए आए। अवध के शाह नसीरुद्दीन हैदर से भी आपने मुलाकात की। शाह आपके एक कसीदे पर इतना प्रसन्न हुआ कि ५०० रु० वार्षिक वृत्ति निश्चित करदी। सन् १८४६ में दिल्ली-दरबार से मिर्जा को "नज्मुद्दौला दबीरुलमुल्क निजामजंग" की पदवी तथा ५० रु० मासिक की वृत्ति मिली। रामपुर के नवाब यूसुफअली आपके शिष्य बन चुके थे। वे समय-समय पर आपकी सहायता करते थे। आगे चलकर यहाँ से मिर्जा को १०० रु० मासिक वृत्ति मिलने लगी। नवाब रामपुर ने इन्हें रामपुर आने के लिए कई बार निमन्त्रण दिया, पर परिस्थितियों में उलझे मिर्जा न जा सके। अन्त में रुकी हुई पैन्शन से निराश होकर आपको रामपुर जाना ही पड़ा, जहाँ उनका खूब सत्कार हुआ। यूसुफअली के बाद उनका पुत्र क़लबअली नवाब बना। उससे मिलने मिर्जा दूसरी बार रामपुर गए।

मृत्यु किसी युद्ध में हुई थी। इस समय मिर्जा की आयु केवल पाँच वर्ष थी। पिता का साया सिर से उठ जाने के बाद यह अपने चाचा नसरुल्ला-ख़ाँ के पास रहकर पढ़ने लगे, पर, भाग्य को मिर्जा का यह सहारा भी न सुहाया। सन् १८०६ में चाचा भी चल बसे। फिर मिर्जा का पालन-पोषण ननिहाल में हुआ।

बचपन में इन्हें एक विद्वान मिर्जा मुअज्ज़म ने शिक्षा दी। १४ वर्ष की आयु में एक दूसरा शिक्षक रखा गया। ग़ालिब इनसे लगभग दो वर्ष पढ़े। १३ वर्ष की आयु में इनका विवाह शहजादए गुलफ़ाम नवाब इलाही बख्श की बेटी उमराव से हो गया। दिल्ली की गली कासिमजान में वे उमराव बेगम को व्याहने गए। उनका अधिकांश जीवन वहीं व्यतीत हुआ था। उमराव से मिर्जा की बहुत नोक-झोंक चलती थी। बेगम रोज़ा-नमाज़ की पूरी पाबन्द और परहेज़गार थी। मिर्जा इस बात पर उसे 'हज़रत मूसा की बहिन' कहकर चिढ़ाया करते थे। जब ज़्यादा परेशान हो जाते तो खीझकर कहने लगते।

"मेरा तो नाक में दम कर दिया।"

इनका दाम्पत्य-जीवन सुखी नहीं कहा जा सकता। इनके कोई भी सन्तान नहीं थी। यही दुःख दोनों के बीच सदा बना रहा। इसके अतिरिक्त घर की आर्थिक स्थिति भी ठीक नहीं थी। खाने-पीने तक का सामान उधार आया करता था। सदा यह किराए के मकानों में ही रहे। एक बार एक मकान किराए के लिए देखने गए। बाहर की बैठक तो स्वयं मिर्जा ने देखकर पसन्द करली, किन्तु ज़नानखाना पसन्द करना उन्होंने उचित नहीं समझा। इसके लिए उन्होने बेगम को ही भेजा। जब बेगम मकान देखकर लौटी तो मिर्जा ने पूछा—

"क्यों, घर पसन्द आया?"

बेगम बोली—"उसमें तो लोग बला बतलाते हैं।"

मिर्जा एक क्षण चुप रहे और मुस्कराए। तभी उन्हें शरारत सूझ पड़ी। छेड़ने के इरादे से बोले—

आ

"क्या दुनियाँ में आपसे वढ़कर भी कोई बला है ?"

वेगम का चेहरा तमतमा उठा।

वेगम की खीझ की चिन्ता किए विना ही मिर्जा उन्हें छेड़ते रहते। वे पिछले पहर रोज़ाना घूमने जाया करते थे। एक दिन गोधूली के वाद जव वे घूमकर घर लौटे तो उमराव वेगम अस्र (गोधूली वेला) की नमाज़ पढ़ रही थी, साथ ही वाकरअली की वहू जमानी वेगम (वुग्गा वेगम) भी उसी तख़्त पर थी। जव उन्होंने सलाम फेरा तो मिर्जा को छेड़ की सूझी और वोले—

'वाह वा ! खूव ! वहू को भी अपना-सा कर लिया। कम्हारी वूँट का कीड़ा अपने घर ले जाती है तो चालीस दिन में उसे अपना-सा करके निकाल देती है।"

और मिर्जा "हो-हो" कर हँस दिए।

जागीर के वदले मिर्जा को जो पैंशन मिलती थी, वह सन् १८२९ में वन्द हो गई। उसके लिए वे कलकत्ता भी गए। दो वर्ष तक प्रयत्न करने पर भी उन्हें सफलता नहीं मिल पाई। निराश हो लौट पड़े। लौटते समय वनारस और लखनऊ होते हुए आए। अवध के शाह नसीरुद्दीन हैदर से भी आपने मुलाकात की। शाह आपके एक कसीदे पर इतना प्रसन्न हुआ कि ५०० रु० वार्षिक वृत्ति निश्चित करदी। सन् १८४९ में दिल्ली-दरवार से मिर्जा को "नज्मुद्दौला दवीरुल्मुल्क निजामजंग" की पदवी तथा ५० रु० मासिक की वृत्ति मिली। रामपुर के नवाव यूसुफअली आपके शिष्य वन चुके थे। वे समय-समय पर आपकी सहायता करते थे। आगे चलकर यहाँ से मिर्जा को १०० रु० मासिक वृत्ति मिलने लगी। नवाव रामपुर ने इन्हें रामपुर आने के लिए कई वार निमन्त्रण दिया, पर परिस्थितियों में उलझे मिर्जा न जा सके। अन्त में रुकी हुई पैन्शन से निराश होकर आपको रामपुर जाना ही पड़ा, जहाँ उनका खूब सत्कार हुआ। यूसुफअली के वाद उनका पुत्र क़लवअली नवाब वना। उससे मिलने मिर्जा दूसरी बार रामपुर गए।

ग़ालिब बड़े मस्तमौला थे। कठिनाइयों में भी निरन्तर हँसते रहना उनकी अपनी विशेषता थी। उनका शेर लिखने का अपना एक खास तरीका था। प्रायः रात के समय वे सोचा करते। जब कोई नया शेर उनके दिमाग में आजाता तो वे कमरबन्द में एक गाँठ लगा लिया करते थे। इस प्रकार सोने से पहले उनके कमरबन्द में सात-आठ गाँठें लग जाती थीं। दूसरे दिन उन गाँठों के आधार पर याद कर-कर वे उन शेरों को लिख लिया करते थे। इतना ही नहीं, शेर कहने का भी मिर्जा का अपना अलग ही अन्दाज़ था। ग़ालिब के लिए कहा जाता है—

"कहते हैं कि ग़ालिब का है, अन्दाज़े-बयाँ और।"

बादशाह बहादुरशाह 'ज़फर' भी इनके शेर सुनकर बोले—"मिर्जा! तुम पढ़ते खूब हो।" "मौलाना हाली आपके अन्दाज़े-बयाँ' पर मुग्ध थे। उन्होंने मिर्जा की तारीफ़ करते हुए बतलाया कि मुशायरों में तो मिर्जा के शेर पढ़ने का अन्दाज़ हद से ज़्यादा दिलकश था। एक मुशायरे में मिर्जा ने अपना फ़ारसी का कसीदा दरिया गरेस्तन तथा तनहा गरेस्तन पढ़ा, जो उन्होंने जनाब इमामहुसैन की मनक़बत में लिखा था। कहते हैं कि जब तक कसीदा पढ़ा गया, लोग रोते रहे।

मिर्जा बहुत ही स्वाभिमानी व्यक्ति थे। अपनी आत्मा के विरुद्ध उन्होंने कभी कुछ नहीं किया। सन् १८४१ में उन्हें देहली कॉलेज का प्रोफ़ेसर बनाकर बुलाया गया। जब वे वहाँ पालकी में पहुँचे तो यह देखकर हैरानी हुई कि टामसन साहब अगवानी के लिए बाहर नहीं आए। पूछने पर पता चला कि नौकरी के मामले में मिर्जा मातहत होंगे, इसलिए अगवानी का प्रश्न ही नहीं उठता। दोस्ती की बात ही दूसरी थी। स्वाभिमानी मिर्ज़ा प्रोफ़ेसरी को ठोकर मारकर लौट आए। उन्होंने लिखा—

"बन्दगी में भी वह आज़ाद व खुदबी हैं कि हम,
उलटे फिर आये दरे क़ाबा अगर वा न हुआ।"

(अर्थात्—उपासना में भी मैं इतना स्वाधीन और आत्माभिमानी

रहा हूँ कि यदि क़ाबे का दरवाज़ा मेरे आगमन पर खुला न मिला तो उल्टे पांव लौट आवूंगा।)

मिर्जा के कई मित्र थे। मित्र-मण्डली में मिर्जा खुलकर परिहास करते थे। इनके दोस्तों में हज़रत मोहम्मद नसीरुद्दीन उर्फ कालेमियाँ तथा हकीम रज़ीउद्दीन प्रमुख थे। हाज़िरजवाबी और व्यंग्य करने में मिर्जा कभी पीछे न रहे। इनके मित्र हकीम रजीउद्दीन को आम अच्छे नहीं लगते थे, जबकि मिर्जा को आम खाने का बहुत शौक था। एक बार दोनों बैठे थे। उसी समय एक गधे वाला अपने कुछ गधों के साथ गुज़रा। गली में आम के छिलके पड़े थे। एक गधे ने उन छिलकों को सूंघा और आगे बढ़ गया। हकीम साहब के मन में शरारत सूझी, हँसते हुए बोले—

"देखो मिर्जा ! आम ऐसी चीज है, जिसे गधा भी नहीं खाता।"

मिर्जा ने तुरन्त उत्तर दिया—

"बेशक ! आम ऐसी चीज है, जिसे गधा नहीं खाता।"

हकीम साहब कटकर रह गए।

इसी प्रकार गदर के दिनों की घटना है। कुछ अंग्रेजों ने मिर्जा को पकड़ लिया, कर्नल ब्राउन के सामने पेश किया। इस समय मिर्जा के सिर पर ऊँची टोपी थी तथा उनका वेश विचित्र था। कर्नल ने पूछा—

"वेल, टुम मुसलमान है ?"

मिर्जा तुरन्त बोल उठे—"आधा।"

कर्नल कुछ समझ नहीं पाया। हैरानी के स्वर में पूछा—

"टुमारा मटलब ?"

मिर्जा बोले—"शराब पीता हूँ, सूअर नहीं खाता।"

कर्नल मिर्जा की हाज़िरजवाबी से प्रसन्न हो गया। उसने हँसकर मिर्जा को छोड़ दिया।

ग़ालिब जीवनभर पीड़ाओं के बीच रहकर भी मुस्कराते रहे। सन्तान न होने का दुःख तो उन्हें दिन-रात कुरेदता रहा। अन्त में उन्होंने अपनी

बीबी के भतीजे आरिफ़ को गोद लिया। आरिफ़ का पूरा नाम जैनुल-आब्दीनखाँ था। आरिफ के भी दो विवाह हुए। पहला विवाह नवाब शम्सुद्दीनखाँ की सगी बहिन नवाब बेगम से हुआ, जो प्रसूति में मर गई। इसके बाद दूसरा विवाह मिर्जा मुहम्मदअली बेग बुखाराई की कन्या बुस्ती बेगम उर्फ नवाब दूल्हन से हुआ, जिससे आरिफ के दो पुत्र हुए—बाकरअलीखाँ और हुसैनअलीखाँ। दुर्भाग्य का प्रहार फिर हुआ तथा बुस्ती बेगम भी वृक्क-वेदना से पीड़ित होकर चल बसी। मिर्जा को अभी और बहुत कुछ देखना था। बुस्ती बेगम की मृत्यु से तीन-चार महीने बाद आरिफ की मृत्यु हुई। इस दुर्घटना ने मिर्जा को बुरी तरह तोड़कर रख दिया। आरिफ की स्मृति में मिर्जा ने कई शेर लिखे—

> "लाज़िम था कि देखो मेरा रस्ता कोई दिन और।
> तनहा गये क्यों अब रहो तनहा कोई दिन और॥
> आये हो कल और आज ही कहते हो कि जाऊँ।
> माना कि नहीं आज से अच्छा कोई दिन और॥
> जाते हुए कहते हो कयामत को मिलेंगे।
> क्या खूब ? कयामत का है गोया कोई दिन और॥

हमेशा तंगी में रहने पर भी मिर्जा जीवन में सदा शान से रहे। तीन-चार नौकर हमेशा रहते थे, जिनमें मदारी या मदारखाँ, कल्लू व कल्यान प्रमुख थे। मिर्जा शराब बहुत पीते थे। यहाँ तक कि कर्ज ले-लेकर भी शराब पीने में पीछे नहीं रहे। इसके अतिरिक्त भी मिर्जा को और कई शौक थे, जैसे-शतरंज खेलना, आम खाना, पक्षी पालना, जुए-बाजी आदि। राजा बलवानसिंह से उन्होंने बहुत पतंगें लड़ाई थीं। वे बहुत ही भावुक और कोमल प्रकृति के व्यक्ति थे। बहुत जल्दी ही पसीज उठते थे। बौद्धिक वातावरण मिर्जा को बहुत पसन्द था, यही कारण है कि उनके यहाँ प्रायः अच्छे-अच्छे लोगों की बैठक जमती थी। इनके समय में शेख इब्राहीम 'ज़ौक' बड़े मशहूर शायर थे। इनसे मिर्जा की

बहुत छेड़छाड़ चलती रहती थी। 'ज़ौक' का यह शेर मिर्जा को बहुत पसन्द था—

'अव तो घवरा के यह कहते हैं कि मर जायेंगे।
मर के भी चैन न पाया तो किधर जायेंगे।।"

मौमिन का एक शेर उन्हें वहुत पसन्द था—

"तुम मेरे पास होते हो गोया।
जव कोई दूसरा नहीं होता।।"

यह शेर मिर्जा को इतना पसन्द था कि वे कहते थे—'काश! मोमिन मेरा सारा दीवान ले लेता और सिर्फ यह शेर मुझको दे देता।"

जीवनभर परिस्थितियों से लड़ता ग़ालिव अन्त में टूट ही गया। अन्तिम समय में मिर्जा बार-बार वेहोश हो जाते। इस क्रम में एक बार बहुत देर तक वेहोश रहने के वाद जव उन्हें होश आया तो उनकी चेतना कुछ सम्हली। हाली गए तो मिर्जा ने उन्हें पहिचान लिया। अन्तिम क्षणों में उन्होंने मिर्जा बाकरअलीखाँ की सवसे बड़ी लड़की मीरज़ा जीवनवेग को बहुत याद किया। वह प्रायः ग़ालिब के पास ही खेला करती थी। मिर्जा की इच्छा समझकर कल्लू भीतर उसे लिवाने गया तो पता चला कि वह सो रही है। जव यह समाचार बीमार मिर्जा को दिया गया तो उन्होंने गावतकिए से सिर टिकाया, आँखें मूंद लीं और फिर वेहोश हो गए। अन्तिम क्षणों में भी वे मृत्यु से संघर्ष लेते रहे। अन्त में, १५ फरवरी, सन् १८६९ को इनकी मृत्यु हो गई। निजामुद्दीन औलिया के पास चौंसठखम्भे में इनका मक़बरा बना हुआ है।

प्रमुख रचनाएँ

मिर्जा ग़ालिव की उल्लेखनीय रचनाओं में 'कुल्लियाते नस्त' तथा 'उर्दू-ए-मोअल्ला' है। इनके अतिरिक्त मिर्जा ने और भी कई रचनाएँ कीं। 'लतायफे ग़ैबी', 'दुरपशे कावेयानी', 'नामए ग़ालिब', 'मेहनीम' आदि गद्य में हैं। 'फारसी के कुलियात' में फारसी कविताओं का संग्रह

है। 'दस्तम्बू' नामक ग्रन्थ में उन्होंने सन् १८५७ के वलवे का आँखों देखा वर्णन फारसी गद्य में प्रस्तुत किया है।

'प्यासा दरिया' : आधार

प्रस्तुत नाटक 'प्यासा दरिया' मिर्जा के जीवन की प्रमुख पीड़ा की चुभन को आधार वनाकर लिखा गया है। निःसंतान होने का दुःख उनके जीवन का सवसे कठिन और मार्मिक पक्ष था, जिसे मनोविश्लेपण के आधार पर स्पष्ट करने का मैंने प्रयास किया है। उनके दाम्पत्य जीवन में फैली कटुता का एक मुख्य कारण यह भी था। इसी प्रसंग में किसी डोमनी के साथ हुए प्रेम सम्वन्ध की वात कुछ लोगों के द्वारा कही गई है। मिर्जा के जीवन-संघर्ष को चित्रित करने में मैंने इसी चरित्र का सहयोग लिया है। इसे प्रस्तुत करते समय मेरे समक्ष मिर्जा की मानसिक पीड़ाओं को अधिकाधिक मुखर रूप में प्रकट करने का उद्देश्य प्रमुख रहा है। इस प्रसंग में कल्पना का पर्याप्त प्रयोग हुआ हैं, इसे स्वीकार करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

यह नाटक लघु रूप में आकाशवाणी, जयपुर से २० जून, १९६९ को रात्रि पौने दस वजे प्रसारित हो चुका है। इसकी रचना के मूल में यदि भाई श्री गंगाप्रसाद माथुर का आग्रह और प्रेरणा न होती तो सम्भवतः यह इस रूप में सामने आ ही नहीं पाता। आखिर पीछे पड़कर उन्होंने रेड़ियो के लिए इसे मुझसे लिखवा ही लिया। उन्हीं की प्रेरणा, मैं उन्हें सस्नेह भेंट कर रहा हूँ।

इस नाटक को इतने सुन्दर ढंग से प्रकाशित करने के लिए भाई श्री जगदीश माथुर निश्चय ही साधुवाद के पात्र हैं।

'प्यासा दरिया' के रूप में अपनी नवीन कृति पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है।

हिन्दी-विभाग,
गवर्नमेण्ट कॉलेज, टोंक (राज)
सत्येन्द्र पारीक

है। 'दस्तम्बू' नामक ग्रन्थ में उन्होंने सन् १८५७ के बलवे का आँखों देखा वर्णन फारसी गद्य में प्रस्तुत किया है।

'प्यासा दरिया' : ग्राधार

प्रस्तुत नाटक 'प्यासा दरिया' मिर्जा के जीवन की प्रमुख पीड़ा की चुभन को आधार बनाकर लिखा गया है। निःसंतान होने का दुःख उनके जीवन का सबसे कठिन और मार्मिक पक्ष था, जिसे मनोविश्लेषण के आधार पर स्पष्ट करने का मैंने प्रयास किया है। उनके दाम्पत्य जीवन में फैली कटुता का एक मुख्य कारण यह भी था। इसी प्रसंग में किसी डोमनी के साथ हुए प्रेम सम्बन्ध की बात कुछ लोगों के द्वारा कही गई है। मिर्जा के जीवन-संघर्ष को चित्रित करने में मैंने इसी चरित्र का सहयोग लिया है। इसे प्रस्तुत करते समय मेरे समक्ष मिर्जा की मानसिक पीड़ाओं को अधिकाधिक मुखर रूप में प्रकट करने का उद्देश्य प्रमुख रहा है। इस प्रसंग में कल्पना का पर्याप्त प्रयोग हुआ हैं, इसे स्वीकार करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

यह नाटक लघु रूप में आकाशवाणी, जयपुर से २० जून, १९६९ को रात्रि पौने दस बजे प्रसारित हो चुका है। इसकी रचना के मूल में यदि भाई श्री गंगाप्रसाद माथुर का आग्रह और प्रेरणा न होती तो सम्भवतः यह इस रूप में सामने आ ही नहीं पाता। आखिर पीछे पड़कर उन्होंने रेड़ियो के लिए इसे मुझसे लिखवा ही लिया। उन्हीं की प्रेरणा, मैं उन्हें सस्नेह भेंट कर रहा हूँ।

इस नाटक को इतने सुन्दर ढंग से प्रकाशित करने के लिए भाई श्री जगदीश माथुर निश्चय ही साधुवाद के पात्र हैं।

'प्यासा दरिया' के रूप में अपनी नवीन कृति पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है।

हिन्दी-विभाग,
गवर्नमेण्ट कॉलेज, टोंक (राज)

सत्येन्द्र पारीक

• पात्र–परिचय

मिर्जा ग़ालिब	—	मशहूर शायर
हकीम रजीउद्दीन काले मियाँ	—	मिर्जा के दोस्त
आरिफ़	—	मिर्जा का गोद लिया बेटा

•

उमराव बेगम	—	मिर्जा की बेगम
सुल्ताना	—	रजीउद्दीन की बेगम
नगीना	—	तवायफ़
नूर	—	नगीना की दासी

•

इनके अतिरिक्त सारंगीवान सुरजूखाँ, तबलची अहमद, कोचवान कल्लू, सुलेमान का नौकर, बड़े मियाँ तथा अन्य नागरिक ।

अंक : एक
दृश्य : एक

●

स्थान : हकीम रज़ीउद्दीन की बैठक

●

(संगीत की विभिन्न ध्वनियाँ उठती हैं—गिरती हैं ।)

(हकीम रज़ीउद्दीन की बैठक सुरुचिपूर्ण ढंग से सजी है। फर्श पर एक वहुत सुन्दर कालीन बिछा है, जिसके कुछ भाग पर सफेद चांदनी से ढका गद्दा बिछा है। दो-तीन मसनदें तरतोव से लगी हैं। दो मसनदों से पीठ टिकाए पास-पास ही मिर्जा असदउल्ला खाँ ग़ालिव तथा उनके मित्र हकीम रज़ीउद्दीन बैठे हैं। सामने दो प्याले और शराब से भरी सुराही रखी है।

रात्रि की निस्तब्धता बैठक के वाहरी और भीतरी वातावरण में फैली हुई है। शून्यता में कभी-कभी दूर से 'जागते रहो' तथा कुत्तों के भौंकने की ध्वनियाँ सुनाई पड़-पड़ जाती हैं। हवा के रह-रहकर आती लहरियों से पर्दे डोल-डोल उठते हैं। मिर्जा ग़ालिव तथा हकीम रज़ीउद्दीन शराब पीने में संलग्न हैं। पास ही एक सुनहरा कामदार उगालदान रखा है तथा उसके निकट ही चाँदी का सुन्दर पेचवान भी दीख पड़ता है। वीच-वीच में दोनों वारी-वारी से गुड़गुड़ी ले लेते हैं। शून्यता में कभी-कभी गले की खराश तथा शराब की कड़वाहट और तीखेपन से होने वाली विभिन्न आवाज़ें उभरती हैं।

मिर्जा के वदन पर तन्ज़ेव का कुर्त्ता तथा सफेद रंग का पायजामा है। सिर पर टोपी। रज़ी-उद्दीन चूड़ीदार पायजामा तथा कुर्त्ता पहिने है।)

मिर्जा : प्याला भर दो, मियाँ!

(रज़ीउद्दीन को विचार-तन्द्रा टूट जाती है। सुराही उठाकर मिर्जा का प्याला भरने लगते हैं। इसी प्रयत्न में सुराही प्याले से टकरा उठती है। इससे वातावरण की शून्यता में एक हल्की-सी खनक गूँज उठती है। प्याला भर जाने पर मिर्जा ग़ालिब प्याला उठाकर ओठों से लगा लेते हैं। रज़ीउद्दीन सुराही रख देते हैं।)

मिर्जा : (शराब पीकर प्याला खाली करते हुए जायका लेकर) अमां यार रज़ीउद्दीन! सुराही रखने की भी ऐसी क्या जल्दी थी। (रुककर) थोड़ा सरूर और चाहिए।

(हाथ का प्याला सामने बढ़ाते हैं।)

रज़ीउद्दीन : अब बस भी करो, मियाँ ग़ालिब! (रुककर) ज़्यादा पी लोगे तो होशोहवास ही खो बैठोगे।

मिर्जा : बस········(हँसते हुए) अरे मियाँ····

रज़ीउद्दीन : (बात काटकर) लो, मियाँ! नहीं मानते तो····

(रज़ीउद्दीन सुराही उठाकर मिर्जा के हाथ का खाली प्याला भर देता है।)

मिर्जा : (एक घूँट लेकर) यार! तुम भी कैसे अहमक हो! (रुककर) मियाँ! होशोहवास खोने के लिए ही तो पी जाती है, यह! (नशीले स्वर में) अमां इधर देखो····

(हाथ का प्याला उठाकर रोशनी की ओर करते हैं।)

शीशा-ए-जाम में भरी यह रंगीन परी........
(विचारों में डूबते हुए) कितनी-कितनी खूबसूरत है। इसे पाकर तो सचमुच ज़ीस्त का मज़ा आ जाता है। जो चाहता है........(दीर्घ श्वास लेकर) यह हमेशा-हमेशा हमारे आग़ोश में बनी रहे। पैमाने की एक-एक छलक सीने को एक-एक धड़कन में मिल जाए—रवाँ हो जाए।

(एक बार में ही प्याले की बची-खुची शराब खाली हो जाती है। मिर्जा प्याला खाली हो चुकने पर उसे रजीउद्दीन के सामने रख देता है।)

रज़ीउद्दीन : मिर्जा....(रुककर) अमां यार, होश में हो या नहीं....?

मिर्जा : (लड़खड़ाते हाथ से खाली प्याले को सहलाते हुए नशीले स्वर में—)
"इश्क से तबीयत ने ज़ीस्त का मजा पाया,
दर्द की दवा पाई, दर्द-बे दवा पाया।"[1]
(हिचकी लेकर) ला, इसी पर भरदे एक जाम और....

रज़ीउद्दीन : (चौंककर मिर्जा की ओर एकटक देखते हुए)
अरे....पागल हो गए हो क्या, भाईजान ? (रुककर) एक और-एक और करते-करते तुम कितने प्याले अपने हलक में उँडेल चुके हो।

(इसी समय निस्तब्धता में दूर से कुत्तों के भौंकने की आवाज़ सुनाई पड़ती है।)

---

१. प्रेम से प्राणों को जीवन का परमानन्द प्राप्त हुआ। रामबाण औषधि मिली पीड़ा की। और पीड़ा मिली वह—परम, जिसकी औषधि अश्विनीकुमार; धन्वन्तरि (लुकमान) के भी पास नहीं।

(मिर्जा के कन्धे पर हाथ रखकर) मियाँ ! रात काफ़ी हो गई है.......भाभी जान तुम्हारी इन्तज़ार में परेशान हो रही होंगी ।

(तभी पुनः दूर कुत्तों के भौंकने की आवाज़ के साथ ही साथ 'जागते रहो' की आवाज़ भी दूर-दूर तक गूंज उठती है ।)

मिर्जा : (अपने ही में खोए हुए) हूँ....(हंसते हुए) इन्तज़ार....

(और भी तेजी से हँस पड़ते हैं । शान्त वातावरण में मिर्जा की वहकी-वहकी हँसी उभरती है ।)

(फुसफुसाकर) इन्तज़ार....(विचारों में डूबते हुए) हाँ, उमराव बेगम ने हमारा इन्तज़ार किया था । मगर छोड़ो....(होश में आने की चेष्टा करते हुए) लाओ, एक प्याला और पिलादो....फिर मिर्जा और नहीं माँगेगा....

(कहते हुए मिर्जा ने अपना खाली प्याला रज़ीउद्दीन की ओर बढ़ा दिया ।)

रज़ीउद्दीन : लो....

(हकीम रज़ीउद्दीन पास ही रखी सुराही से मिर्जा का खाली प्याला भर देता है । लगता है—सुराही भी खाली हो चली है ।)

(सुराही रखते हुए) तुम भी कैसे बेपरवाह आदमी हो, मिर्जा ! न खाने की चिन्ता....न घर की फिक्र !

(रज़ीउद्दीन अपने पास ही रखी चाँदी की पानदानी में से एक पान निकालकर चवा लेता है ।)

(पान चवाते हुए) इतनी-इतनी रात गए तक घर

से बाहर रहते हो। (रुककर) बेचारी भाभीजान की ज़िन्दगी इसी तरह इन्तज़ार करते-करते ही गुज़र जाएगी....कुछ तो उनका ख़्याल कर लिया करो !

(सहसा मिर्ज़ा के मुख पर क्रोध की विभिन्न रेखाएँ उभरती हैं। तीव्र वाद्य-ध्वनियां उठती हैं, जो इस बात की प्रतिक्रिया-स्वरूप मिर्जा के मन की हलचल को स्पष्ट करती हैं।)

मिर्जा : (तीव्र स्वर में) रज़ीउद्दीन....

(क्रोधावेश में हाथ का प्याला फेंक देते हैं। शान्त वातावरण में प्याला टूटकर बिखर जाता है। आवेश में मिर्जा की श्वासें तेजी से आने-जाने लगती हैं।)

रज़ीउद्दीन : क्या बात है, मिर्जा ?

मिर्जा : (आवेश में भरकर) सारा मज़ा ही किर-किरा हो गया। (रुककर) तुम नहीं जानते, रज़ीउद्दीन ! जान भी नहीं सकते....! (बहकते हुए) अच्छा है—तुम यह सब कुछ न जानो। इसे जानना बहुत-बहुत मँहगा पड़ता है....ज़िन्दगी....

(आवेश में मिर्जा एक साथ बहुत कुछ बक देना चाहते थे, पर सहसा कुछ सोचकर रुक गए।)

रहने दो....चलना चाहता हूँ।

रज़ीउद्दीन : (मसनद से कुछ हटकर अच्छी तरह बैठते हुए) लगता है—तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है। (रुककर) पालकी भी तुम साथ नहीं लाए हो। नीचे मेरी बग्घी है, वह तुम्हें घर छोड़ आएगी।

मिर्जा : (उठने का प्रयत्न करते हुए) रहने दो....(रुककर)

मिर्जा असदउल्लाखाँ ग़ालिब यह आजमाना चाहता है कि वह बेसहारा होकर भी जी सकता है या नहीं। (रुककर) अच्छा····भाभीजान से मेरा सलाम अर्ज कर देना····

(मिर्जा उठ खड़े होते हैं।)

रज़ीउद्दीन : सुनो तो····मिर्जा !····बग्घी ले जाना····

मिर्जा : (विना कुछ सुने) अच्छा····ख़ुदा हाफ़िज····

(मिर्जा का प्रस्थान। इसके उपरान्त बैठक में शान्ति व्याप जाती है।)

रज़ीउद्दीन : ओह····मिर्जा चले गए····

(रज़ीउद्दीन एक क्षण के लिए मसनद के सहारे अधलेटे-से होकर कुछ सोचने लगते हैं। इसी समय कोने पर दरवाज़े के पर्दे को हटाकर बेगम धीमे कदमों से प्रवेश करती है। रज़ीउद्दीन को बेगम के आगमन का आभास ही नहीं हो पाया, अत: वह उसी प्रकार विचारों में डूबा बैठा है। बेगम पास आकर खड़ी हो जाती है। एक बार आस-पास के वातावरण को देखकर धीमे स्वर में पूछती है—)

बेगम—क्या सोच रहे हैं ?

(रज़ीउद्दीन चौंककर सामने देखता है।)

रज़ीउद्दीन : (चौंककर) तुम····बेगम ! अब तक जाग रही हो ?

बेगम : जी····(लम्बी श्वास लेकर) मिर्जा साहब को क्या हो गया है ?

रज़ीउद्दीन : (भारी स्वर में) कुछ भी समझ में नहीं आता, बेगम ! (रुककर) पागल हो गया है, मिर्जा।

(सहसा बाहर के दरवाज़े से मिर्जा का तेजी से

प्रवेश। प्रवेश करते-करते मिर्जा रज़ीउद्दीन के कथन का अन्तिम अंश सुन लेता है।)

मिर्जा : (आवेश में) मिर्जा पागल हो जाता तो भी अच्छा था, रज़ीउद्दीन !

(बेगम मिर्जा के आकस्मिक आगमन से घबरा जाती है।)

बेगम : (घबराकर) उई अल्लाह....

(मुँह ढांपते हुए शरमाकर भीतर की ओर भाग जाती है।)

रज़ीउद्दीन : अरे....मिर्जा ! क्या बात है ?

(आश्चर्य में भरकर खड़ा हो जाता है।)

मिर्जा : मेरी बोतल तो यहीं रह गई थी....

(लपककर सुराही के पास रखी बोतल को उठा लेता है।)

(रुककर) माफ़ करना, भाई जान ! ध्यान ही नहीं रहा कि भाभीजान भी यहीं खड़ी हैं। अच्छा.... मैं चला....

(बिना कुछ कहे-सुने मिर्जा तेजी से बाहर निकल जाता है। रज़ीउद्दीन ठगा-सा खड़ा देखता रह जाता है। चाहते हुए मिर्जा से कुछ कहने का अवसर उसे नहीं मिल पाता। विचारों में डूबा रज़ीउद्दीन भारी कदमों से भीतर की ओर बढ़ता है। किन्तु, सहसा कुछ सोचकर खिड़की के पास हवा से उड़ते हुए पर्दे से सटकर खड़ा रह जाता है। तभी बेगम पुनः प्रवेश करती है।)

बेगम : (प्रवेश करते हुए) मिर्जा साहब चले गए ?

रज़ीउद्दीन : (लम्वी श्वास लेकर) हाँ, सुल्ताना !

(इसी समय दूर घड़ियाल की एक आवाज़ रात्रि के एक वजने की सूचना देता है। साथ ही एक साथ कई कुत्तों के भौंकने की आवाज़ें भी सुन पड़ती है।)

बेगम : (निकट आकर) ग्राप कुछ ग़मगीन नज़र ग्रा रहे हैं, क्या बात है ?

रज़ीउद्दीन : (लम्वी श्वास लेकर) नहीं तो····मैं तो मिर्जा के ही बारे में सोच रहा था। (रुककर) ज़िन्दगी को इस तरह ग्राखिर कव तक ग्रौर कैसे घसीटा जा सकेगा, कुछ समझ में नहीं आता।

बेगम : यों उमराव बेगम का मिजाज़ जरूर कुछ तेज है, मगर वह तो इस सव का कोई सबव नहीं माना जा सकता····(रुककर) असलियत कुछ और ही है, जिसे हम नहीं जानते।

रज़ीउद्दीन : (भारी आवाज़ में) ज़िन्दगी जो भी रंग दिखाए कम है।

(लम्वी श्वास निकल जाती है।)

(विपय को वदलते हुए) छोड़ो भी यह सव····आओ, ग्रव ग्राराम करें....रात वहुत वीत चुकी है।

(पर्दा हटाकर भीतर चले जाते हैं। कमरे की खामोशी में हवा से पर्दे अभी भी डोल-डोल उठते हैं)

अंक : एक
दृश्य : दो

•

स्थान : रज़ीउद्दीन की हवेली का बाहरी भाग

•

(बाहर बग्घी खड़ी है। घोड़े कभी-कभी हिन-हिना उठते हैं। कोचवान अपने स्थान पर बैठा है। चाँदनी रात में आसपास का सारा वातावरण खामोशी और सफेदी में सना हुआ है। सहसा भीतर से तेज चाल से मिर्जा बाहर निकलकर बग्घी की ओर बढ़ते हैं)

मिर्जा : (बग्घी पर चढ़ते हुए) चलो, कल्लू !

कल्लू : किधर चलें, हुजूर !

मिर्जा : (बैठकर बग्घी का फाटक बन्द करते हुए) सीधी सड़क पर बढ़े चलो····जहाँ आस-पास ज़्यादा बस्तियाँ न हों····(रुककर) कुछ देर घूम लें तो ठीक रहेगा····

कल्लू : लेकिन सरकार ! इतनी रात गए घूमना····

मिर्जा : (बात काटकर) जैसा हम कहें, वैसा ही करो। चलो····

कल्लू : जैसी हुजूर की मर्जी····

(कल्लू कोचवान के संकेत पर बग्घी चल पड़ती है। शान्त वातावरण में घोड़ों की टापों तथा बग्घी के चलने की आवाज़ें गूँज उठती हैं। बीच-बीच में कभी कुत्तों के भौंकने तथा

'जागते रहो' की आवाज़ें भी अस्पष्ट रूप में सुन पड़ती हैं। मिर्जा की दृष्टि बग्घी के दौड़ने के साथ ही साथ पीछे की ओर छूटते सुन्दर चाँदनी में सने दृश्यों पर जमी रहती है।)

मिर्जा : (फुसफुसाते हुए) वल्लाह···कितनी खूबसूरत रात है····। दूधिया चाँदनी में नहाई हुई ज़मीन····

(विचारों में खो जाते हैं। बग्घी और घोड़ों की टापों के स्वर चलते रहते हैं।)

काश! बग्घी इसी तरह चलती रहे····। यह सफ़र····(ठण्डी श्वास लेकर) कभी····कभी ख़त्म न हो। (रुककर) सोचा था—ज़िन्दगी का यह सफ़र बहुत हसीन बना रहेगा··· मगर····

(बग्घी तथा घोड़े की टापों के बीच संगीत की ऐसी सरसराहट भरी ध्वनियाँ उभरती हैं, जो अतीत की सूचक होती हैं।)

(फुसफुसाकर) रज़ीउद्दीन ने हमारे जख्मों को फिर से कुरेद दिया····

(सहसा मिर्जा की कल्पना में हकीम रज़ीउद्दीन के द्वारा कहे गए शब्द गूँज-गूँज उठते हैं)

'····अरे, पागल हो गए क्या, भाईजान? (रुककर) एक और-एक और करते-करते तुम कितने प्याले अपने हलक में उँडेल चुके हो।····'

('····मियां! रात काफ़ी हो गई है···भाभी जान तुम्हारी इन्तजार में परेशान हो रही होंगी।)

(उथल-पुथल की सूचक तेज वाद्य-ध्वनियां उठती हैं—गिरती हैं। मिर्जा के मन का आवेश

और बढ़ जाता है। साथ ही बग्घी व घोड़ों की टापों की आवाजें भी निरन्तर चलती रहती हैं।

मिर्जा : (अपने में ही डूबते हुए फुसफुसाकर) इन्तज़ार···· (लम्बी श्वास निकल जाती है।) उमराव बेगम ने कभी हमारा इन्तज़ार किया था····। (रुककर) वह हसीन लमहे हम कभी नहीं भूल सकते····(फुसफुसाते हुए) कभी नहीं भूल सकते····

(फ्लेश बैक—फेड इन)

(शान्त वातावरण में एक पुरुष तथा नारी कण्ठ की सम्मिलित हँसी उभरती है।)

मिर्जा : (हँसते हुए) अब देखता हूँ—तुम बचकर कहाँ भागती हो····उमराव !

(उमराव की मीठी हँसी।)

उमराव : (हँसते हुए) पहले आप पकड़ तो लीजिए····

मिर्जा : अच्छा····तो यह बात है····? (रुककर) अभी लो—तुम्हें अपनी गिरफ़्त में कैद कर बताता हूँ।

(मिर्जा उमराव को पकड़ने का प्रयत्न करता है, किन्तु उमराव फुर्ति से बच निकलती है।)

उमराव : (शरारत भरे लहज़े में) बस····पकड़ लिया ?···· (रुककर) देखा····कैसा छकाया····

(उमराव की मीठी हँसी गूँज उठती है।)

मिर्जा : (अपने में खोते हुए) सुभान अल्लाह····

(सहसा मिर्जा चीख पड़ते हैं।)

आह····

(दोनों हाथों से सीना थामकर गिर पड़ते हैं।)

उमराव····

(उमराव की चंचलता तथा हँसी यकायक थम जाती है। घवराकर वह मिर्जा के पास पहुँचती है।)

उमराव ; (भयभीत होकर) क्या हुग्रा····? (काँपता आवाज़ में) ग्ररे····रे····ग्राप तो अपना सीना दाबे हुए हैं···· क्या वात है····बतलाइए····

(उमराव कांपते हाथों से मिर्जा को सम्हालने का प्रयत्न करती है।)

मिर्जा : (कराहते हुए) उमराव····(रुककर) थोड़ा सहारा····

उमराव : (रुआँसी आवाज़ में) या ख़ुदा ! तू ही देख, मेरे मालिक ! (काँपकर) यह कैसा मज़ाक····(भीगे और रुँधे कण्ठ से) परवर दिगार !

मिर्जा : (कराहकर) उमराव····

(मिर्जा के मुँह से लम्वी निश्वास निकल जाती है। उनका एक हाथ अभी भी सीने को दावे हुए है।)

उमराव : या अल्लाह···

(ज़मीन पर बैठकर मिर्जा का सिर अपने घुटने के सहारे टिका देती है।)

(घवराई आवाज़ में) क्या बात है ? कुछ तो कहिए····

मिर्जा : सीने में अचानक दर्द होने लगा····

उमराव : (काँपते स्वर में) सीने में दर्द····? क्यों····? अचानक सीने में यह दर्द कैसे हो गया ?

मिर्जा : (उमराव पर एकटक दृष्टि डालते हुए—लम्वी श्वास लेकर) हाय····बेगम ! तुम्हारा हुस्न····तुम्हारे नाज़ोअन्दाज़ देखकर।

उमराव : (झेंपती-सी) अच्छा····तो यह वात थी····

(उमराव फुर्ति से उठकर भागने का प्रयत्न करती है कि मिर्जा उसका हाथ पकड़ लेते हैं ।)

मिर्जा : (उमराव का हाथ पकड़कर) अब छूटकर नहीं जा सकती, उमराव !

(हँस पड़ते हैं ।)

उमराव : (कृत्रिम क्रोध का अभिनय करते हुए) जाइए···· हम आपसे नहीं बोलते····

मिर्जा : (शरारत भरे लहज़े में) कहो····तुमने तो हमें छका-कर देख लिया····(रुककर) हमने भी तुम्हें कैसा छकाया····नहले पर दहला····

(दोनों का तेज सम्मिलित हास्य वातावरण में गूँज उठता है । संगीत की झनझनाहट भरी वाद्य-ध्वनि)

(फेड आउट)

(मिर्जा की विचार-तन्द्रा जब टूटती है तो बग्घी अभी भी उसी गति से चल रही थी, घोड़ों की टापें भी उसी गति से गूँज रही थीं ।)

मिर्जा : (लम्बी श्वास लेकर) किसे मालूम था कि ज़िन्दगी का वह हसीन मोड़ हमारे साथ एक बहुत बड़ा मज़ाक था । (रुककर) हम सब कुछ भूलकर उसे अपना—सिर्फ़ अपना सोच बैठे थे । हम ज़िन्दगी के इस सफ़र को ख़ुशी के साथ गुजार देना चाहते थे, लेकिन····(निश्वास लेकर उमराव को हमारी खुशी और रंगीन तबियत अच्छी नहीं लगती थी····)

(संगीत की झनझनाहट भरी ध्वनियाँ)

(फ्लेश बैक—फेड इन)

(रात्रि की शून्यता में मिर्जा अपनी बैठक में

अपने मित्र नसीरुद्दीन उर्फ काले मियाँ के साथ बैठे शतरंज की चालों में उलझे हैं। दोनों ही बहुत गम्भीर और विचारमग्न हैं। पास ही पेंचवान रखा है, पर किसी को उसकी गुड़गुड़ी लेने का ध्यान नहीं है। कुछ क्षण इसी प्रकार चुप्पी व्याप्त रहती है।)

मिर्जा : अमां यार काले मियाँ ! अब तुम्हारे लिए कोई चाल बाकी नहीं रही।

(काले मियाँ ठुड्डी पर हाथ रखकर कुछ देर शतरंज पर अपनी आँखें गड़ाए रहते हैं।)

काले मियाँ : (सोचते हुए गम्भीर स्वर में) यह कैसे कहा जा सकता है, मिर्जा ! (रुककर) शतरंज की चालों में एक नहीं कई गुत्थियाँ रहती हैं। पता नहीं कौन-सी गुत्थी कब आगे की चाल बना दे।

(कुछ क्षण फिर शून्यता व्याप्त जाती है। दोनों ही अपनी-अपनी चालें सोचने में लग जाते हैं।)

मिर्जा : रहने भी दो....तुम्हारी मात हो गई....

काले मियाँ : तुम भी क्या याद रखोगे, मिर्जा !....

(काले मियाँ के चेहरे पर गम्भीरता के स्थान पर मुस्कुराहट चमक उठती है।)

(तेज़ स्वर में) देखा....मिल गई न चाल ? (मोहरा चलते हुए) ए....ये....ल्लो....अब पहले अपना हाथी पिटवा लो....

मिर्जा : (गम्भीर स्वर में) कमाल है....कमाल है, भाईजान ! (रुककर) वाह....क्या खूबी के साथ अपना वज़ीर निकाल ले गए और शह भी बचाली....(ठण्डी साँस लेकर) लो, भई ! पिटवाए लेते हैं अपना हाथी....

(काले मियाँ अपना मोहरा आगे बढ़ाकर मिर्ज़ा का हाथी पीट देते हैं। इसी समय कहीं दूर घड़ियाल की दो आवाज़ें रात्रि की शून्यता में गूंज कर दो बजने की सूचना देती हैं।)

काले मियाँ : (जम्हाई लेकर) दो बज गए…भई, मिर्जा ! अब चला जाय…बहुत रात बीत गई…(रुककर) बेगम नाराज़ हो रही होगी…

(अंगड़ाई लेता है।)

मिर्जा : (शरारत भरी मुस्कान के साथ) बहुत खूब… (रुककर) शतरंजी चालों में शिकस्त न खाने वाला काले मियाँ अपनी बेगम के आगे हार जाता है…

(कहकर मिर्जा जोर से हंस पड़ते हैं।)

काले मियाँ : (खिसियाए स्वर में) नहीं, मिर्जा ! यह बात नहीं है। (रुककर) बात दरअसल यह है कि पता नहीं, कब तुम्हारा कोई नन्हा-सा भतीजा इस दुनिया में…

मिर्जा : (बात काटकर) अच्छा…?

(हंसने का प्रयत्न करता है।)

(काले मियाँ के कन्धे पर हाथ रखते हुए) हम तो तुम्हें पहले से ही अपना दिली मुबारक बाद दिए देते हैं…(रुककर) जाओ, माफ़ किया !

(दोनों एक साथ हंस पड़ते हैं।)

काले मियाँ : (मानो कुछ याद आ गया हो) तो कल किले चल रहे हो न…बादशाह सलामत के हुजूर में…?

मिर्जा : जरूर…जरूर…साथ-साथ ही चलेंगे।

काले मियाँ : (उठने का प्रयत्न करते हुए) अच्छी बात है…

(दोनों उठ खड़े होते हैं।)

खुदा हाफ़िज....

मिर्जा : खुदा हाफ़िज....

(काले मियाँ का प्रस्थान। पीछे-पीछे ही मिर्जा भी जाते हैं, पर दूसरे ही क्षण वे पुनः लौट आते हैं। बैठक का सन्नाटा और भी गहरा जाता है। मिर्जा एक क्षण के लिए अपनी दृष्टि बैठक के सूनेपन पर डालते हैं। सहसा उन्हें कुछ याद हो आता है।)

मिर्जा : (जम्हाई और अंगड़ाई लेते हुए) दो बज गए। (जोर से) अमाँ....उमराव जान सो गईं क्या?

(उमराव बेगम भीतर के कमरे से धीमे कदमों से प्रवेश करती है। उसकी चाल भारी और निद्रालु प्रतीत होती है।)

उमराव : (प्रवेश करते हुए) आप सोने दें तब तो....

मिर्जा : (शरारत भरी मुस्कान के साथ) ओह....सलाम।

(मिर्जा सावधान की मुद्रा में उमराव बेगम की ओर मुंह कर एक क्षण के लिए खड़े हो जाते हैं, तदुपरान्त बड़े अन्दाज़ के साथ झुककर सलाम करते हैं।)

(सलाम करते हुए) उमराव जान बेगम के हुजूर में मिर्जा असदउल्ला खाँ ग़ालिब सलाम बजा लाता है....

(उमराव बेगम के मुख मर झुँझलाहट व खीझ के भाव उभरते हैं।)

उमराव : (खीझकर) रहने दीजिए, यह सब नाटक! हमें यह सब अच्छा नहीं लगता।

(मिर्जा के मुख पर शरारत भरी चंचलता के

स्थान पर विस्मय एवं 'कुछ नहीं समझने' का भाव प्रकट होता है।)

मिर्जा : (आश्चर्य भरे स्वर में) हुजूर के मुँह पर नाराज़ी की शिकनें....(रुककर) क्या मैं हुजूर से यह पूछने की जुर्रत कर सकता हूँ कि हुजूर हमसे क्यों खफा हैं....? (रुककर) हुजूर को क्या अच्छा नहीं लगता....?

उमराव : (गम्भीर होकर) इतनी-इतनी रात गए तक आप लोगों के साथ शतरंज खेलते रहते हैं....। शराब की मस्ती को ही आपने सब कुछ समझ लिया है....(रुककर भीगी आवाज़ में) जैसे हमसे कोई सरोकार ही नहीं है....

(उमराव का स्वर रूँआसा हो जाता है।)

मिर्जा : (निकट आकर) अरे....रे....(स्वर में प्यार भरते हुए) बस....इतने ही से नाराज़ हो गई ?

(उमराव के कंधे पर हाथ टिका देते हैं।)

उमराव : (भीगे कण्ठ से) आपको अपनी मस्ती और कहकहों से ही फुर्सत नहीं मिलती। (रुककर) आपको क्या पता....पीछे हम पर क्या-क्या नहीं गुज़रता....

(उमराव के मन की सारी पीड़ा उसके नेत्रों में उमड़ आती है। एक क्षण के लिए उमराव वेगम तथा मिर्जा के नेत्र परस्पर मिल जाते हैं।)

मिर्जा : (उमराव के नेत्रों में झाँकते हुए) हम....कुछ समझे नहीं, उमराव !

उमराव : जानते हैं....शराब की उधारी आप अभी तक चुका नहीं पाए....उधर कर्ज लेकर भी लावारिस

INSTITUTE OF ADVANCE

भिखारियों को आपने ईद पर कम्बल बँटवा दिए....। (रुककर) घर में खाने-पीने का सामान भी कब से उधार चला आ रहा है....(खीझ भरे स्वर में) आखिर यह सब कब तक चलेगा....कैसे चलेगा ?

मिर्जा : यह तो ज़िन्दगी का सफ़र है, उमराव ! (रुककर) सफ़र में क्या तकलीफ़....क्या आराम....(लापरवाही के साथ) सब ठीक हो जाएगा....

उमराव : (खीझकर) सब ठीक हो जाएगा....? (शब्दों पर ज़ोर देते हुए) कैसे सब ठीक हो जाएगा....? आप शराब उधार लेकर पीना छोड़ नहीं सकते....शतरंज की चालों में आधी-आधी रात तक उलझे रहते हैं....। आप ही बतलाइए—कैसे सब ठीक हो जाएगा ?

(मिर्जा को सहसा कोई उत्तर नहीं सूझ पड़ता है। एक क्षण के लिए शून्यता छा जाती है।)

मिर्जा : (सोचते हुए) नवाब रामपुर को ख़त लिखे हुए बहुत दिन हो गए....शायद एकाध दिन में वज़ीफा आ जाय....(जैसे कुछ याद आ गया हो) और हाँ.... कल मैं काले मियाँ के साथ बादशाह बहादुरशाह 'ज़फर' के दरबार में भी जा रहा हूँ....(रुककर) शायद वहाँ कुछ हो जाए....

उमराव : मकानवाला भी किराए के लिए तक़ाजा कर रहा था....

मिर्जा : (चिन्तित स्वर में) तुम फिक्र न करो....चलो.... चलकर सोया जाय....

(एक क्षण के लिए शान्ति व्याप जाती है, जिसमें दूर से कुत्तों के भौंकने तथा 'जागते रहो' की गूँज सुनाई पड़ती है। मिर्जा तथा

उमराव बेगम भारी क़दमों से भीतर की ओर बढ़ते हैं। सहसा मिर्जा को कुछ याद आ जाता है।)

(रुकते हुए) और हाँ, उमराव ! एक बात कहना तो मैं भूल ही गया····

उमराव : (नेत्रों में उत्सुकता लिए) क्या ?

मिर्जा : जानती हो····काले मियाँ के बच्चा होने वाला है····

उमराव : (बात काटते हुए) मैंने सब सुन लिया है····

मिर्जा : बड़ा जश्न रहेगा····तुम्हें भी चलना होगा····

(उमराव खामोशी से खड़ी रहती है, बोलती कुछ भी नहीं। वह इस प्रकार सुनती रहती है जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो। मिर्जा कुछ समझ नहीं पाते।)

(चौंककर) मगर····उमराव····तुम्हें इससे कोई खुशी नहीं····(रुककर) अरे····तुम खामोश और उदास क्यों हो गई····उमराव····?

(उमराव चुप रहती है। न हिली न डुली।)

(आश्चर्य भरे स्वर में) उमराव····बेगम····(तेज आवाज़ में) उमराव····

(मिर्जा बेगम के दोनों कन्धे पकड़कर झकझोर देते हैं। उमराव जैसे नींद से जागी हो, उसी तरह की दृष्टि से मिर्जा की ओर देखती है।)

उमराव : (लम्बी श्वास लेकर) जी····

मिर्जा : क्या बात है ? अचानक यह मायूसी····कुछ समझ नहीं पड़ता····

उमराव : नहीं····कोई बात नहीं है····। मैं तो बिल्कुल ठीक हूँ

(फीकी हंसी से मुस्कराने की चेष्टा करती है ।)

मिर्जा : नहीं····तुम मुझे भुलावा नहीं दे सकती····

(कहते हुए मिर्जा उमराव के बिल्कुल निकट आकर उसके मुंह को ऊपर उठाते हुए उसकी आँखों में झाँकने की चेष्टा करते हैं ।)

(उमराव की आँखों में आँखें डालते हुए) तुम झूठ कह रही हो, उमराव !

(उमराव मिर्जा के नेत्रों से नेत्र मिलाने में स्वयं को असमर्थ जानकर नेत्र झुका लेती है ।)

उमराव : आप तो ख्वामख्वाह परेशान हो रहे हैं····मैं बिल्कुल ठीक हूँ ।

(उमराव का स्वर भर्रा जाता है ।)

मिर्जा : देखो, बेगम ! तुम्हारी आवाज़ भारी हो गई ।

(मिर्जा अब अपने दोनों हाथों में उमराव का मुंह थामकर उसे अपनी ओर उठा लेते हैं । एक क्षण के लिए उमराव के नेत्र उठकर मिर्जा की आँखों से मिल जाते हैं, पर तत्काल ही झुक जाते हैं ।)

(गम्भीर होकर) तुम अपनी मायूसी को भले ही छुपा लो, बेगम ! मगर····इन आँखों को क्या कहोगी····जो यह साफ-साफ कह रही हैं कि तुम्हारे दिल में कहीं न कहीं कुछ है····

(उमराव अपनी पलकें मूंद लेती है ।)

(व्यथित होकर) उमराव····

(उमराव खामोश रहती है ।)

(प्यार भरकर) बोलो, उमराव !

(उमराव की साँसें तेजी से ऊपर-नीचे होने

लगती है। वह अपनी पलकों को मूँदे रखती है। सहसा बन्द पलकों की कोरों से दो आँसू की बून्दे ढुलक कर गालों पर बह निकलती है।)

(चौंककर) उमराव....तुम्हारी आँखों में आँसू....?

(उमराव सहसा मिर्जा से :अपने को छुड़ाकर दोनों हाथों में मुँह डालकर सिसकती हुई भीतर कमरे में भाग जाती है। मिर्जा रात के शून्य वातावरण में कुछ क्षण इसी प्रकार स्तब्ध से खड़े रह जाते हैं। कमरे में सुबकती हुई उमराव की सिसकियाँ साफ-साफ सुनाई पड़ती हैं।)

(फुसफुसाते हुए) उमराव की मायूसी....और आँसू....(सोचते हुए) क्या बात है....कुछ भी समझ नहीं आता....

(सिसकियाँ सुनाई पड़ती रहती हैं।)

उमराव....चली गई....

(निश्वास लेकर खम्भे से टिककर मिर्जा कुछ सोचने लगते हैं, पर सोच नहीं पाते।)

कुछ समझ में नहीं आता....इधर-उधर सब ओर खामोशी ही खामोशी.... इस खामोशी का मतलब....

(बेगम की सिसकियाँ पुनः स्पष्ट होती हैं।)

उमराव....रो रही है....

(गम्भीर वाद्य-ध्वनियाँ मुखरित होती है।)

(सोचते हुए) हाँ....आ....ऽऽ....

"दिल मेरा सोजे-निहाँ से बे-महाबा जल गया।
आतिशे-खामोश के मानिन्द गोया जल गया॥"[1]

---

१. अप्रकट आग की तरह चुपके-चुपके अन्दर ही अन्दर मेरा हृदय अन्तः ज्वाला से अबाध जल गया।

(मिर्जा के मुख से एक लम्बी निश्वास निकल जाती है। पार्श्व में उमराव की सिसकियाँ पुनः स्पष्ट होती हैं।)

चलूँ····देखूँ, क्या बात है ?

(मिर्जा जल्दी से अपने कुर्ते के पल्लू को मोड़कर गाँठ बांध लेते हैं तथा भीतर की ओर बढ़ते हैं। भीतर का कमरा सोने का है। उमराव बेगम पलंग पर मसनद से टिकी सुबक-सुबक कर रो रही थी। मिर्जा भारी कदमों से उमराव के पास जाकर पलंग के किनारे पर बैठ जाते हैं।)

(गम्भीर स्वर में) **उमराव····क्या बात है ?**

(उमराव और भी जोर से सुबक उठती है।)

(सुबकती हुई उमराव की पीठ पर हाथ रखते हुए)

अपने दिल का दर्द हमसे छुपाकर क्यों रखना चाहती हो तुम, उमराव ?

(उमराव की सिसकियाँ)

बतलाओ, उमराव !····क्या बात है····?

(कण्ठ रुँध जाता है)

उमराव····हमारी कसम····

उमराव : (सुबकती हुई) **नहीं····नहीं····कसम न दीजिए····**

(एक क्षण के लिए खामोशी छा जाती है। कभी-कभी उमराव की हल्की सिसकियाँ उभरती हैं तथा बीच-बीच में दूर से कुत्तों के भौंकने की आवाजें भी आती हैं।)

मिर्जा : **कहो, उमराव !** (रुककर) **तुम्हारे दिल में हम झाँकना चाहते हैं····**

(उमराव भारी और उदास मन से अपना चेहरा उठाती है। उसके गाल आँसुओं से तर थे तथा आँखें रोने से लाल हो रही थीं।

उमराव : कुछ नहीं····(अटकती हुई) यह अकेला सूना घर हमें काटने को दौड़ता है····। (खीझकर) यहाँ कहीं कोई हलचल नहीं····कोई शोरशराबा नहीं ····किसी की जिद्द नहीं····किसी की किलकारी ····(चौंककर) उई अल्ला····मैं क्या कह बैठी····

(उमराव दाँतों के बीच अपने ओठ दबा लेती है तथा अत्यधिक शरमाहट के कारण मसनद में अपना मुँह छुपा लेती है। एक तेज ध्वनि होती है, जो मिर्जा के मन पर हुए कठोर आघात की सूचना देती है। पार्श्व में गम्भीर वाद्य-ध्वनियाँ उठती हैं—गिरती हैं। मिर्जा के चेहरे पर अनेक रेखाएं उभरती हैं।)

मिर्जा : (मन में उठने वाली भयंकर उथल-पुथल के बीच) समझा····तुम्हारे दिल का दर्द हमने समझ लिया है····उमराव····

(अत्यधिक शोक और भावावेश में घिरकर मिर्जा छटपटा उठते हैं।)

(भारी स्वर में) उफ्·· एक अजीब-सी घुटन····एक अज़ीब-सा सन्नाटा चारों ओर फैल रहा है····

(आवेश में मिर्जा पलंग पर से उठ खड़े होते हैं तथा पीठ के पीछे हाथ बान्धकर व्याकुलता से घूमने लगते हैं।)

(सोचते हुए)

"दिल में फिर गिरिय: ने इक शोर बढ़ाया गालिब।
आह जो क़तरा न था, सो तूफ़ाँ निकला॥"[1]

(मिर्जा के मुँह से एक लम्बी निश्वास निकल गई। एक क्षण के लिए खामोशी छा जाती है, जिसमें कुत्तों के भौंकने की आवाज़ें यदा-कदा सुन पड़ती हैं। मिर्जा कुछ सोचते हुए कुर्ते के दूसरे पल्लू पर गाँठ बाँध लेते हैं।)

(गम्भीर स्वर में) तुम खामोश हो गई, उमराव! (रुककर) यह रात भी खामोश है··· (कातर कण्ठ से) और हम भी खामोश हैं····

(एक क्षण खामोशी)

खामोश न रहें····तो क्या करें····? क्या कहें?···· (रुककर) कैसे तुम्हें तसल्ली दें. उमराव! (रुंधे कण्ठ से) रोशन चिराग के बिना हमारे खान्दान में एक गहरा अन्धेरा छाता चला जा रहा है····

(हलचल भरी संगीत ध्वनियाँ)

(सहसा हवा का तेज झौंका आता है, जिससे खिड़की के पर्दे डोल-डोल उठते हैं तथा मोमबत्ती की जलती हुई बाती तेजी से लड़खड़ाकर बुझ जाती है।)

(चौंककर) अरे····रे···बेगम! देखो, हवा ने मोमबत्ती को बुझा दिया····गहरा····घना गहरा अन्धेरा ····(रुककर) चारों ओर अन्धेरा ही अन्धेरा····

---

१. हा, ग़ालिब! पुनः रुदन ने हृदय में हाहाकार भर दिया है। अब तक मेरे बहुत दबाने से जो करुणा (आँसू की) बून्दें बनकर बाहर निकलने नहीं पाई थीं, वही अब प्रलय-वाहिया बनी निकट बहाव पर है।

(संगीत की हलचल वहुत तेज हो जाती है।)

(फेड आउट)

(पुनः वही बग्घी के चलने तथा घोड़ों की टापों के स्वर उभरते हैं। बग्घी के बाहर से ठण्डी हवा का तेज झौंका आकर मिर्जा के नशे को सहला देता है।)

कल्लू : (बग्घी चलाते-चलाते) अब घर की ओर चलें, सरकार ?

(मिर्जा कल्लू कोचवान की बात नहीं सुन पाते हैं।)

(पुनः तीव्र स्वर में) हुजूर····मिर्जा साहब !

मिर्जा : (सचेत होकर) हाँ····क्या बात है, कल्लू ?

कल्लू : अब घर की ओर चलें, सरकार ? (रुककर) आपको छोड़कर वापिस लौटना भी तो है। मालिक इन्तज़ार करेंगे।

मिर्जा : हम कहाँ तक आ गए हैं ?

कल्लू : सरकार ! शहर का किनारा आ गया है।

मिर्जा : (गम्भीर स्वर) किनारा····आखिरी किनारा···· (वड़बड़ाते हुए) मगर हमारी ज़िन्दगी के सफ़र का आखिरी किनारा····(बात वदलते हुए) चलो लौट चलो।

(बग्घी की गति कुछ हल्की पड़ती हुई पुनः तेज हो जाती है। बग्घी मुड़कर दूसरे रास्ते की ओर बढ़ जाती है। चाँदनी रात में खुली सड़क पर दौड़ती हुई बग्घी के पास सहसा दो-

तीन कुत्ते आकर भौंकने लगते हैं। बग्घी के पीछे भी वे कुछ दूर दौड़ते हैं, पर पीछे रह जाने से रुककर भौंकने लगते हैं। बग्घी दूर-दूर होती जाती है। इसी के साथ घोड़ों की टापों के स्वर मन्द होते-होते अन्त में समाप्त हो जाते हैं।)

● ●

अंक : एक
दृश्य : तीन

•

स्थान : गली कासिमजान में स्थित मिर्जा के मकान का एक भाग

•

(मकान के भीतरी आंगन में सहन से लगा हुआ एक बरामदा है, जिसमें तख्त बिछा है। तख्त पर गद्दा तथा दीवाल से सटी दो मसनदें रखी हैं। पास ही ऊँचा-सा पेंचवान भी दीख पड़ता है। तख्त पर बिछे गद्दे पर मसनद से पीठ टिकाए मिर्जा बैठे हुए कुछ सोच रहे हैं। कभी-कभी याद आ जाने पर वे गुड़गुड़ी ले लेते हैं, अन्यथा पेंचवान उनके हाथ में ही पड़ा रहता है।

दोपहर का समय है। सहन में एक ओर कुछ फूलों के पौधे लगे हैं। उसी के पास भीतर के लिए एक दरवाज़ा बना है। वहीं जमीन पर कपड़ा बिछाए उमराव बेगम नमाज़ में व्यस्त है। वह उल्टे घुटनों बैठी है, हाथ जुड़े हैं, नेत्र बन्द। यदा-कदा वह भूमि पर माथा टेकती है तथा हाथ जोड़कर कुछ क्षण स्थिर भाव से बैठी रहती है।

मकान का सदर दरवाज़ा बन्द है। भीतर शान्ति छाई हुई है। मिर्जा अभी भी कुछ सोचने में लगे हैं। सोचते-सोचते ही एक लम्बी गुड़-गुड़ी लेते हैं, जिससे ढेर सारा धुँआ 'धव्वा' से मुँह के बाहर निकल जाता है तथा मिर्जा को तेज खाँसी आ जाती है।)

मिर्जा : (खाँस चुकने पर) **अरे भई मदारी....कहाँ हो ?**

(आवाज़ सूने घर में गूंजकर रह जाती है, कोई उत्तर नहीं मिल पाता।)

(जोर से) **अरे भई, कोई है....?**

(पुनः वही खामोशी। मिर्जा एक उड़ती-सी दृष्टि इधर-उधर डालते हैं, पर जब कहीं कोई नहीं दीखता तो वे झुंझला उठते हैं।)

(खीझ भरी आवाज़ में) **पता नहीं, सारे नौकर कहाँ चले गए ?** (एक क्षण रुककर जोर से पुकारते हैं) **अरे भई, कोई है भी या नहीं....?**

(पर कोई उत्तर नहीं मिलता। सभी ओर खामोशी ही खामोशी छाई है।)

अजब तमाशा है....कोई नहीं बोलता....(रुककर) **गला फाड़-फाड़कर हैरान हो गया····मगर किसी के कान पर जूँ तक नहीं रेंगती····**(सोचते हुए-) **कमबख्त जूँ भी इन लोगों से मिल गई दीखती है, वर्ना इन सब लापरवाहों के कानों पर रेंगने की बजाय इतने जोर से काट ले····इतने जोर से काट ले कि कान खींचने का मजा आ जाय····** (रुककर) **फिर देखें, एक आवाज़ पर बोलते हैं या नहीं।**

(मिर्जा एक गुड़गुड़ी लेकर धुँआ हवा में फैला देते हैं।)

(अपनी छोटी-सी काली दाढ़ी पर हाथ फिराते हुए) और उमराव का भी तो कहीं पता नहीं....

(इधर-उधर देखते हैं, पर नमाज़ अदा करती उमराव पर उनकी दृष्टि नहीं पड़ती, कारण वरामदे का खम्भा बीच में आ जाता है। उमराम वेगम नमाज़ पूरी करती है।)

उमराव : (नमाज़ पूरी कर चुकने पर) या अल्लाह! तू ही देख, मेरे मालिक!

(एक लम्बी श्वास निकल जाती है।)

(उठती हुई) क्या बात है? सारा घर ही चीख-चीख कर सिर पर उठा लिया....

(अव मिर्जा को पता लगा कि उमराव नमाज़ अदा कर रही थी। उसी ओर दृष्टि डालने पर सामने से आती वेगम दीख पड़ती है।)

मिर्जा : ओह....तो आप जनाब नमाज़ अदा कर रही थीं ....और मैं गला फाड़-फाड़कर हैरान हो गया.... अजीब हालत है....कोई सुनता ही नहीं....

उमराव : (तुनककर) आखिर बात भी तो सुनूं....क्या है?

मिर्जा : अब क्या रखा है....(रुककर) पहले आती तो बात भी थी, अब तो वह बात बे-बात हो गई....

(मिर्जा अपनी वात की प्रतिक्रिया जानने के लिए वेगम पर अपनी नज़र गड़ा देते हैं। वेगम के मुख पर झुंझलाहट और क्रोध के भाव उभरते हैं।)

(शरारत भरी मुस्कराहट के साथ) तुम भी खूब हो,

बेगम ! (रुककर) अरे····खुदा की इबादत के साथ-साथ हमारी—अपने खाविन्द की खिदमत का भी तो कुछ ख्याल कर लिया करो। (छेड़ भरे लहजे में) मगर तुम भी हज़रत मूसा की पक्की बहिन हो···· (रुककर) हमारा तो नाक में दम हो गया है।

उमराव : (झुंझलाकर) देखिए···साफ-साफ सुन लीजिए····! (रुककर) मेरे इबादत के मामले में आप कुछ भी न बोला करें।

(मिर्जा पर उमराव की झुंझलाहट का कोई असर नहीं होता, वरन् वे तो मुस्कराते रहते हैं।)

(क्रोध में) आपको खुदा की परवाह नहीं तो क्या मैं भी परवाह न करूँ? (रुककर) आपको तो शराव और यार-दोस्तों से ही फुरसत नहीं मिलती····

मिर्जा : शराब····? (रुककर) देखो, बेगम ! कान खोलकर सुनलो—हम सब कुछ छोड़ सकते हैं, शराब नहीं छोड़ सकते····(जोर देते हुए) कत्तई नहीं····

उमराव : (गुस्से में) तो कर्ज की ले-लेकर पीते रहिए और अपनी फजीहत कराते रहिए····

मिर्जा : फजीहत···? (फीकी हंसी हंसते हुए कुछ सोचने लगते हैं) हाँ····आ····ऽऽ····

"कर्ज की पीते थे मै, लेकिन समझते थे कि हाँ,
रंग लायेगी हमारी फाका मस्ती एक दिन।[1]"

---

१. ऋण लेकर मधुपान हम करते तो थे; पर, अच्छी तरह यह जानते हुए कि यह लंगोटी में फाग एक दिन चोले में अमिट दाग लगा, कोई न कोई अघटित घटना घटाकर छोड़ेगी।

(इसी समय सहसा बाहर से कोई पुकार उठता है ।)

आवाज : हुज़ूर मिर्जा साहब····

(दरवाज़े पर खटखटाहट होती है ।)

(रुककर तेज स्वर में) मिर्जा असद साहब····

मिर्जा : (चौंककर) क़ौन होगा····? (उमराव से) ज़रा किसी को भेजकर पता तो लगवाओ, बेगम ! कौन है ?

उमराव : आप खुद ही जाकर क्यों नहीं देख लेते····

मिर्जा : ओफ्····हो····बेगम ! तुम समझती क्यों नहीं····

उमराव : (बात काटकर व्यंग्य से) कर्जदारों से डर लगता है न ?

मिर्जा : (खीझ भरे स्वर में) देखो, बेगम ! इस वक्त मज़ाक मत करो ।

(बाहर से फिर किसी के पुकारने की आवाज़ आती है ।)

आवाज : (ज़ोर से) क़िब्ला मिर्जा साहब····

(दरवाज़े पर इस बार खटखटाहट और भी तेज हो जाती है ।)

मिर्जा : (घबराए स्वर में) भई बेगम ! खुदा के वास्ते जल्दी देखो····किसी को····

उमराव : (बात काट कर) किसे भेजूं ? नौकर यहाँ कोई नहीं है····(रुककर) वक्त पर तनख्वा दी है कभी, जो आपके लिए वफ़ादार बने रहेंगे ?

(मिर्जा निरुत्तर-से एक क्षण के लिए बैठे रह जाते हैं । कोई उत्तर उन्हें नहीं सूझ पड़ता ।)

मिर्जा : (खीझ भरे स्वर में) ओह····क्या करूं····कुछ समझ में नहीं आता····

(बाहर द्वार पर पुनः खटखटाहट होती है ।)

(विवश होकर तेज स्वर में) भई, कौन है ? आ रहे हैं····

(न चाहते हुए भी विवशता का भाव लिए मिर्जा उठकर द्वार की ओर बढ़ते हैं । उमराव बेगम खम्भे की आड़ में खड़ी हो जाती है । मिर्जा दरवाज़ा खोलते हैं । बाहर कोई अपरिचित आदमी खड़ा था ।)

आगन्तुक : सलाम, मिर्जा साहब !

मिर्जा : (जिज्ञासा का भाव लिए) सलाम····

आगन्तुक : (अदब से) जी····यह पर्चा आपकी खिदमत में····

मिर्जा : (न समझने का भाव चेहरे पर लिए) पर्चा····? (रुककर) लाओ····

(मिर्जा हाथ बढ़ाकर आगन्तुक से पर्चा लेकर खोलते हैं तथा एक क्षण के लिए उसे पढ़ने में तल्लीन हो जाते हैं । पढ़ते-पढ़ते मिर्जा के चेहरे पर चिन्ता की कुछ लकीरें उभरती हैं ।)

(पर्चा पढ़ चुकने पर) देखो····सुलेमान साहब से कहना, हमें भी फिक्र है । बहुत जल्दी ही चुकारा करेंगे ।

आगन्तुक : (अदब के साथ) जी····बहुत अच्छा !

(मिर्जा को सलाम कर वहाँ से चला जाता है । मिर्जा द्वार बन्द कर हाथ में पुर्जा थामे भारी कदमों और उदास मन से पुनः अपने तख्त पर आ बैठते हैं । उमराव बेगम, जो अब तक खम्भे की आड़ में खड़ी थी, निकलकर निकट आ खड़ी होती है ।)

उमराव : (उत्सुकता भरे स्वर में) कौन था ?

मिर्जा : सुलेमान का आदमी था ।

उमराव : कितना कर्ज हो गया शराब का····? (रुककर) देखूं तो····

(आगे वढ़कर मिर्जा के हाथ से पर्चा ले लेती है । मिर्जा उदास भाव से बैठे रहते हैं, कोई प्रतिवाद नहीं करते । उमराव पर्चे को गौर से पढ़ने की चेष्टा करती है ।)

(चौंककर) दो सौ रुपया····? इतनी शराब····??

(उमराव वेगम के मुख पर क्रोध और झुंझलाहट के भाव उभरते हैं ।)

(खीझकर) मैं तो समझा-समझाकर हैरान हो गई····मगर कोई माने तब तो····! जब देखो तभी बहला देते हैं····(मुंह बनाते हुए) अब तो वज़ीफा आने ही वाला है····किले जा रहा हूँ····और इधर-उधर की बहाने बाजी····

मिर्जा : छोड़ो भी, बेगम ! यह सब ! (रुककर) अब इस क़र्ज़दारी से किसी भी तरह पीछा नहीं छूटने का ····फिर क्यों ख़्वामख़्वाह माथा-पच्ची की जाए····

(मिर्जा अपनी बात कह चुकने पर उमराव पर नज़र डालते हैं, मगर उसका क्रोध अभी भी वैसा ही था ।)

उमराव : (क्रोध में उफनती हुई) अब मैं और चुप नहीं रहने की····बहुत दिन खामोश रहकर सब ज़ुल्म बर्दाश्त करती रही हूँ····(रुककर तेज आवाज में) कान खोल कर सुन लीजिए····आपकी यह कर्ज़दारी की आदत अब और नहीं चलेगी····

(घर के सूने वातावरण में उमराव बेगम की तेज आवाज गूंज-गूंज उठती है।)

मिर्जा : खुदा के लिए कुछ धीरे बोला करो, बेगम ! (इधर-उधर दृष्टि डालते हुए) कोई सुनेगा तो क्या कहेगा ?

उमराव : (तुनक कर) कहे मेरी बला से····आखिर सब्र की भी हद होती है। (रुककर) अब मैं और खामोश नहीं रह सकती····नहीं रह सकती····

मिर्जा : (बात काटते हुए) बेगम !

उमराव : शराब की खाली बोतलों की बढ़ती हुई कतार अब और आगे नहीं बढ़ सकती····(दृढ होकर) मुझे यह सब रोकना ही होगा····

(मिर्जा के चेहरे पर अब कुछ-कुछ क्रोध झलकने लगा।)

मिर्जा : (कुछ तेज होकर) देखो, बेगम ! बस करो····बहुत हो चुका····(रुककर) अब और आगे न बढ़ो, वर्ना····

उमराव : (क्रोध में उफन कर) वर्ना क्या····? बोलिए····वर्ना क्या करेंगे····मेरी जान ही तो लेंगे····

(बेगम क्रोधावेश में चीखने-चीखने को हो जाती है।)

मिर्जा : (तेज स्वर में) बेगम !

उमराव : (उसी क्रोधावेग में) ले डालिए मेरी जान ! मगर मैं अब और जुल्म बर्दाश्त नहीं कर सकती···· (चीख कर) यह शराब सौत बन कर मेरी छाती पर चढ़ी बैठी है····

(अत्यधिक क्रोधावेग में बेगम का स्वर रुँआसा

हो जाता है ।)

मिर्जा : (क्रोध में भर कर) बेगम !

उमराव : मैं अब नहीं रुकूंगी····

(कहती हुई बेगम बरामदे की ताक में लगी बोतलों की कतार की ओर बढ़ती है।)

(अपनी ही धुन में) मैं इन बोतलों को तोड़कर रख दूंगी····

मिर्जा : देखो, मान जाओ, बेगम ! (रुककर) ख़्वामख़्वाह बात को तूल न दो····

(किन्तु क्रोधित उमराव बेगम पर मिर्जा के समझाने का कोई प्रभाव नहीं होता, उल्टे वह और भी अधिक क्रोध में उफन पड़ती है ।)

उमराव : (ताक के निकट पहुंचते हुए) बोतलें ही नहीं····इस प्याले को भी चूर-चूर कर दूंगी····

मिर्जा : (आवेश में) बेगम ! बस करो····अब बहुत हो चुका ····(रुककर) मेरे प्याले और बोतलों के हाथ लगाया तो अच्छा न होगा····

उमराव : (चीखती हुई) आज आपके हाथों मुझे मरना ही है····मैंने इस बात की पक्की ठानली है । (रुँआँ से स्वर में) यह शराब मुझसे भी अधिक प्यारी है आपको····आज इसका फैसला होकर ही रहेगा····

(उमराव बेगम क्रोध में उफनती हुई हाथ बढाकर एक-एक बोतल फैंकने लगती है । बोतलें फर्श पर गिरकर खनखनाती हुई चूर-चूर हो जाती हैं ।)

मिर्जा : (चीखते हुए स्वर में) बेगम····! उमराव····!! रुक जाओ····(रुककर) देखो, हम अब और बर्दाश्त नहीं

कर सकते····(चीख कर) बेगम····

(अभी भी बोतलें फिक रहीं थी और फर्श से टकराकर बिखर-बिखर जा रही थीं।)

उमराव : (हाथ की बोतल फेंकती हुई) मैंने बहुत दिन अपनी जबान को बाँध कर रखा है····

मिर्जा : (क्रोध में काँपते हुए) बेगम····ओह····नहीं मानती···· (अचानक पूरी शक्ति से चीख उठते हैं) बेगम····

उमराव : (रोती हुई) आप चाहे मार डालिए····आज मैं नहीं रुकूंगी····

(सहसा बेगम दोनों हाथों में मुंह डालकर सुबक-सुबककर रोने लगती है। मिर्जा आवेश में उठ खड़े होते हैं तथा काँपने लगते हैं।)

मिर्जा : (क्रोध में भरे हुए) जब देखो तभी मुसीबत····कभी भी कहीं भी चैन नहीं मिलता····

(बेगम फफक-फफककर रो रही है।)

(हाँफते हुए) यह जिन्दगी अब तल्ख़ हो गई है···· (रुककर) हमारी ख़ुशियां····हमारा अमनोचैन···· सभी कुछ हमसे छीन लिया गया है····

(मिर्जा बुरी तरह हाँफने व काँपने लगते हैं। उधर बेगम अभी भी सिसकती हुई रो रही है। मिर्जा की बात सुनकर उमराव बेगम सहसा मुंह उठाती है तथा सिसकियों के बीच आँसुओं से भरी आवाज और आँखों से कहती है—)

उमराव : (सिसकती हुई) आपकी सारी ख़ुशियां····आपका सारा अमनोचैन····मैंने बटोर कर रख लिया है···· (सिसकी लेकर) मैं बहुत खुश हूँ····बहुत····बहुत खुश····

(और वह फिर फूट-फूटकर बरस पड़ती है ।)

(रोती हुई) यह कैद खाने की-सी ऊंची-ऊंचो दीवारें ....यह अन्धेरे से लिपटी हुई घुटन भरी ज़िन्दगी ....गहरा सन्नाटा....(रुककर) यह सब कितना अच्छा लगता है....(सिसकती हुई) मुझे इन सबसे बहुत-बहुत सकून मिलता है....

(मिर्जा के चेहरे का सारा क्रोध शनैः शनैः ढलता जाता है तथा उसके स्थान पर दीनता और विवशता के भाव उभरने लगते हैं....। वे हक्के-बक्के से खड़े रह जाते हैं। उनके मुंह पर पसीने की बूंदें छलछला आती हैं ।)

मिर्जा : (टूटती-सी आवाज में) बेगम....

उमराव : (उसी आवेश में बहते हुए) जिस ओर देखती हूं.... नज़रें खाली-खाली ही सामने से लौटकर फिर मेरे पास चली आती है । मेरी आवाजें अपनी ही गूंज से टकरा-टकरा कर खुश हो लेती हैं....मैं कितनी खुशनसीब हूँ....कितनी खुशनसीब हूँ....

(उमराव फिर से हाथों में मुंह डालकर खम्भे से टिकती हुई हिलक-हिलककर रो पड़ती है ।)

मिर्जा : (पागल से फुसफुसाते हुए) यह जलन....अब और नहीं सही जाती....मुझे मेरा सकून चाहिए....

(वातावरण बहुत गम्भीर हो जाता है । पार्श्व में उठती हुई गम्भीर वाद्य-ध्वनियाँ वातावरण की गम्भीरता और भारीपन को प्रकट करती हैं । बीच-बीच में उमराव बेगम की सिसकियाँ भी सुनाई पड़ जाती हैं ।)

(सोचते हुए) मैं अपना खोया हुआ सकून फिर से

पाकर ही रहूँगा....

"नाम का मेरे जो है दुख कि किसी को न मिला।
काम में मेरे है वह फित्ना कि वर्पा न हुआ।।"[१]

(लम्बी श्वास लेकर) लेकिन नहीं....मुझे उस सकून की तलाश करनी ही होगी....उसे पाना ही होगा....

(मिर्जा ग़म से भरे पागल-से बरामदे के खम्भे से पीठ टिकाकर सामने खुले आकाश की अनन्तता में मानो कुछ खोजने की कोशिश में उसी ओर एकटक देखते रहते हैं। उधर उमराव रोती और सिसकियाँ लेती हुई भीतर चली जाती है।)

● ●

---

१. मेरे भाग का जो दुर्भाग है, वैसा क्या किसी के भाग में कभी रहा होगा ? मेरे मार्ग में जैसी बाधाएं हैं, वैसा क्या किसी के मार्ग में आई होंगी ?

अंक : दो

•

स्थान : दिल्ली की मशहूर तवायफ़ नगीना जान का कोठा।

•

(एक बहुत बड़ा हॉलनुमा कमरा है, जिसमें सुन्दर फर्श बिछे हैं। स्थान-स्थान पर छोटी-छोटी मसनदें भी लगी हैं, जिनके सहारे कई मनचले और रसिक लोग बैठे हैं। कोई बड़े नाज़ुक अन्दाज़ के साथ पान चवाने में व्यस्त है, तो कोई सामने रखी सौंफदानी से सौंफ को हथेली पर डालकर बड़े शायराना अन्दाज़ से देखकर मुस्करा देता हैं। सभी की निराली शान है।

हॉल के दरवाजों पर बहुत खूबसूरत पर्दें लगे हैं, जो यदा-क़दा आते हवा के झोंकों से डोल-डोल उठते हैं। दीवालों पर सुन्दर कलाकारी की गई है। नक्काशीदार छत से तीन बहुत बड़े-बड़े झाड़-फानूस लटक रहे हैं, जिन पर इधर-उधर की चमक पड़ जाने से बहुत खूब-सूरत चमक उत्पन्न होती रहती है।

वातावरण में कोलाहल और व्यग्रता—दोनों ही घुले-मिले हैं। एक ओर खम्भों के सहारे-सहारे

साज़िन्दे जमे हैं। तवलची 'ठक्····ठक्····' कर छोटी हथौड़ी से तवला ठीक करने का प्रयत्न कर रहा है। सारंगी वान अपनी सारंगी का सुर मिलाने की चेष्टा में व्यस्त है, जिससे कभी-कभी अनचाहे की भाँति सारंगी की 'रें····रें····ऐ ऐ ऐ····' की आवाज कोलाहल में गूंज-गूंज उठती है। हारमोनियम वाले की अंगुलियाँ भी वीच-वीच में सुरों पर दव जाती हैं। आंगन का वीच का भाग खाली है, जिस पर न तो फर्श ही विछा है और न हा कालीन। चमकदार चिकने आँगन पर विभिन्न रंगों के मेल से वहुत सुन्दर गोलाकार फूल-पत्तियाँ अंकित की हुई हैं। उसके एक सिरे से सीधी-लम्वी रास्तानुमा कीमती कालीन की पट्टी विछी हुई है, जो सामने के दरवाजे तक गई है, जिस पर पर्दे तो झूल ही रहे हैं, साथ ही दो खूव, सूरत वाँदियाँ सजी-धजी खड़ी हैं।
भीतर से कभी-कभी घुंघरुओं की छमक की आवाज सुनाई पड़ जाती है। जिससे वातावरण की व्यग्रता और वढ जाती है। कोलाहल के मध्य कुछ स्वर उभरते हैं—)

पहला : आज तो मियाँ चाँद अब तक नहीं उगा····

दूसरा : (मसनद पर फैलने का प्रयत्न करते हुए) हाय····हाय····(निश्वास लेकर) कुछ न पूछो, मियाँ! (रुककर नशीली आवाज में) हम तो, खुदा की कसम तरस कर रह गये हैं।

(सहसा लखनवी पोशाक में एक बूढ़े मियाँजी

पान चबाते हुए उस हलचल भरी महफिल में प्रवेश करते हैं। उन्हें देखकर सारंगी के सुर मिलाने की चेष्टा करते हुए सुरजूखाँ के चेहरे पर मुस्कान खिच आई, जिससे उसकी बारीक मूंछों के ऊपर गाल पर बना बहुत मोटा-सा मस्सा उभर आया।)

सुरजू खाँ : आदाब अर्ज है, बड़े मियाँ।

बड़े मियाँ : (पान चबाते हुए) कहो, सुरजू खाँ ! कैसे हो ?

(बड़े मियाँ लाठी टेकते हुए आगे बढ़ते हैं। अपनी आधी से ज्यादा पकी दाढी-मूंछों के बीच मुस्कराते हुए वे इधर-उधर की हलचल पर दृष्टि डालते हैं।)

(इधर-उधर देखते हुए) आज महफ़िल में बड़ी बेकली नज़र आ रही है····

सुरजू खाँ : (सीने पर हाथ रखकर) क्या कहूं, सरकार ! (निश्वास लेकर) हाय····(रुककर) कोई परछाँई से पूछे —कहाँ है दिल परछांई का !

बड़े मियाँ : बहुत खूब····सुभान अल्लाह····(रुककर) तुम तो शायरी में भी कमाल रखते हो····(बैठते हुए) भई वाह····गज़ब है····नगोना जान का साजिन्दा क्या ····हर पत्थर शायरी के रंग में भीगा हुआ है···· जहे किस्मत····

(बड़े मियाँ हसरत, मुस्कान और खुशियों के बीच मसनद के सहारे फैल जाते हैं। कोलाहल अभी भी चल रहा है। साज़िन्दों की तबले की 'ठक्क्····ठक्क्····', 'धप्प····धम्म्म्····' तथा सारंगी की 'रें····ए····रें ए····ए····ए····' अभी

भी चलती रहती है ।)

सुरजू खाँ : (हंसते हुए) पत्थर ही क्या, बड़े मियाँ ! आप जैसे भी खिचे चले आते हैं शायरी के रंगों में डुबकियाँ लगाने····

(हंसी की दवी-दवी-सी लहर दौड़ जाती है । इसी समय मिर्जा ग़ालिव भी गम्भीर मुद्रा तथा धीमी चाल से प्रवेश करते हैं । सिर पर ऊंची टोपी, वदन पर छींटदार चोगा तथा पायजामा । मुख पर छोटी काली दाढी अच्छी फ़व रही है । देखते ही सुरजूखाँ मचल पड़ता है ।)

आदाव····मिर्जा साहव ! आइए····आइए····

मिर्जा : (मुस्कराते हुए) कहो, सुरजू खाँ ! अच्छे हो ?

सुरजू खां : आपकी मेहरवानी है, मिर्जा साहव ! (रुककर) इधर तो बहुत दिनों से महफिल सूनी ही थी····

मिर्जा : कुछ इधर-उधर के कामों में उलझ गया था, इसी वज़ह से नहीं आ सका ।

सुरजू खाँ : आज महफिल मजेदार जमेगी····क्यों अहमद मियाँ ?

(तवला ठीक करता अहमद सिर उठाकर सामने देखता है । मिर्जा पर दृष्टि पड़ते ही वह मुस्करा पड़ता है ।)

अहमद : सच है, सुरजूखाँ ! जिस दिन मिर्जा साहव नहीं होते····महफिल में जान ही नहीं आने पाती····

(मिर्जा आगे वढकर एक खाली मसनद के सहारे बड़े अन्दाज़ के साथ वैठ जाते हैं ।)

सुरजू खाँ : आज बड़ी मुश्किल से बहुत दिन वाद नगीना बीबी महफ़िल के लिए राजी हुई है····

एक : (बीच में ही) खुदा की कसम····परवाने तरस-तरस कर रह गए····

(निश्वास लेता है ।)

सुरजू खाँ : परवानों की किस्मत आज खुल गई समझो···· (मस्ती में झूमते हुए) आज शमा अपने भरपूर रंगों के साथ जलेगी····

(कोलाहल के बीच 'वाह····वाह' तथा हंसी की मिली-जुली आवाजें उभरती हैं। साथ ही कई स्वर उठते हैं—गिरते हैं ।)

पहला : (पास बैठे व्यक्ति से) मियां, नगीना बाई अभी तक नहीं आयी····

दूसरा : (पान चवाते हुए) अब तो आती ही होगी····

(घुंघरुओं की छमक कुछ स्पष्ट होती है । सभी की दृष्टि सामने दरवाजे पर जाती है। दरवाजे पर खड़ी दोनों बाँदियाँ पर्दा हटाती हैं कि सामने नगीना जान खूबसूरत साज-बाज में सजी-धजी आती दीख पड़ती है ।)

तीसरा : अरे····वह लो····नगीना जान आ ही रही है····

(कोलाहल कम होता जाता है। नगीना जान बड़े नाज़ो अन्दाज़ के साथ धीरे-धीरे उस पट्टीदार कालीन पर आगे बढ़ती है। पान चवाते हुए एक दिलफेंक आवाज़ कस ही तो देता है—)

आवाज : क्या हुस्न पाया है····वल्लाह····

(कोलाहल शान्त हो रहा है, जिनमें घुंघरुओं की छमक स्पष्ट होती जाती है। नगीना सभी ओर सलाम करती आगे बढती है। दर्शकों में

हलचल अभी भी है ।)

पहला : क्या ढाने जा रही हो, नगीना बाई ?

दूसरा : आज अमावस है····(रुककर) चांद आया भी तो ऐसे दिन–ऐसी तेजी लेकर····

(लम्बी निश्वास निकल जाती है ।)

तीसरा : क़यामत ढा रहा है तेरा हुस्न–तेरा जल्वा····

(नगीना बीच के उस खाली भाग पर आकर रुक जाती है, जहाँ अनेक रंगों से चित्रकारी की गई है । वह शान्त मुद्रा में खड़ी है । कोलाहल विल्कुल थम जाता हैं । वातावरण में निस्तब्धता व्याप जाती है । नगीना चारों ओर घूमकर सभी को सलाम करती है । दर्शकों के बीच मसनद से टिके मिर्जा ग़ालिव पर एक क्षण के लिए नगीना की दृष्टि टिक जाती है । एक मुस्कान के साथ दृष्टि झुक जाती है । घुंघरुओं की छमक उठी, तवला वोला, सारंगी के तार झंकृत हुए कि सहसा नगीना जान धीमे स्वर में अदब से बोली—)

नगीना : हज़रात ! आपके रंगीन दिलों को और भी रंगीन बनाने के लिए नए खूबसूरत रंगों का तोहफा हाज़िर है····

(तवले की तेज ताल पर नगीना का कोमल शरीर घुंघरुओं की छमक के साथ झूम उठता है । दूसरे ही क्षण आंगन पर रंगों से की गई चित्रकारी के रंग नगीना के पाँवों के स्पर्श से मिलकर उड़ने लगते हैं । सारा वातावरण रंग-विरंगे रंगों से भर उठता है । लोग 'वाह····

वाह' कर उठते हैं। वड़ी अदा और मुस्कान से नगीना झुककर उनकी तारीफें स्वीकार करती हैं।)

पहला : नगीना जान के हुस्न का जादू इन रंगों के धुँओं सभी पर फैल गया है····सुभान अल्लाह !

(दूसरे ही क्षण तवलची के हाथ तवले पर पड़े, सारंगीवान मस्ती में आया तथा नगीना के घुँघरु छमछमा उठे। संगीत व नृत्य कई क्षणों तक चलता रहा। बीच-बीच में 'वाह-वाह' के फिक़रे भी उठते रहे। कुछ देर के उपरान्त नृत्य समाप्त होता है। कोलाहल होता है।)

दूसरा : जीओ····नगीना बाई····

तीसरा : सुभान अल्लाह····खुदा ने भी क्या शानदार नक्काशी की है····

चौथा : कमाल है, भाई जान····

(नगीना झुक-झुककर आदाव करती है। चम-चमाते खनखनाते सिक्कों की बौछारें होती हैं तो सारा आंगन सिक्कों से भर जाता है। नृत्य समाप्त होने पर एक-एककर दर्शक गण जाने लगते हैं। कुछ ही देर में सभी दर्शक गण चले जाते हैं····साज़िन्दे भी जा चुके थे। रह गए थे मिर्जा तथा नगीना। मिर्जा मुग्ध दृष्टि से सब देख रहे थे।

नगीना : नूर····सभी सिक्के समेट ले जा····

नूर : (आती हुई) जी, हुजूर !

(विखरे सिक्के समेटने लगती है। नगीना मिर्जा साहब के पास आकर अदव से बैठती है।)

नगीना : (मीठी आवाज में) ज़हे किस्मत ! (रुककर) आज बहुत दिन बाद दीदार नसीब हुए हैं, मिर्जा साहब !

मिर्जा : हाँ, नगीना....

नगीना : मगर ज़नाब ! आप किस सोच में डूबे हैं....?

मिर्जा : मैं....? (सोचते सोचते हँस पड़ते हैं ।) तुम्हारी कीमती पेशवाज़ के सामने हमारा छींटदार चोगा फीका पड़ गया है....यही देख रहा था....

नगीना : बहुत खूब....

(हँस पड़ती है । मिर्जा भी हँसी में सहयोग करते हैं । इसी समय नूर झोली में सब बिखरे सिक्के समेट कर चली जाती है । नगीना सौंफ-इलायची पेश करती है—)

लीजिए....

मिर्जा : शुक्रिया....

(इलायची लेकर मुँह में डाल लेते हैं ।)

(नगीना की ओर देखते हुए) नगीना........तुम्हारी पेशानी पर चमकती हुई पसीने की यह बूंदें तुम्हारी पेशवाज़ पर पड़े सितारों की तरह बहुत ही खूबसूरती से झिलमिला रही है....ऐसा लगता है जैसे किसी ने तुम्हारी खूबसूरती में चांद-सितारे जड़ दिए हों....

नगीना : (मीठी आवाज में) यह तो आपकी ज़र्रानवाज़ी है, हुजूर ! (रुककर) आपके एक-एक लफ्ज में शायरी अंगड़ाइयाँ लेती दीख पड़ती है....

मिर्जा : (हँसते हुए) अच्छा....

(मसनद पर अच्छी तरह फैलते हुए—)

"वह आ रहा मेरे हम साये में, तो साये से।
हुए फ़िदा दरो-दीवार पर, दरो-दीवार॥[१]"

नगीना : (मीठी हँसी हँसते हुए) आपके हम साये में कौन आ रहा है....?

(कहकर जिज्ञासा भरी दृष्टि मिर्जा के चेहरे पर टिका देती है। मिर्जा की दृष्टि भी उठती है एक क्षण के लिए दोनों की दृष्टियाँ परस्पर मिलती हैं।)

मिर्जा : (मुग्ध दृष्टि से नगीना को देखते हुए) आ नहीं रहा.... (शब्दों पर जोर देकर) आ रही है....

नगीना : कौन ?

मिर्जा : (लापरवाही के भाव से) है कोई....

नगीना : (ठुड्डी पर अंगुली टिकाती हुई) जानें तो भला....

मिर्जा : ना....

(एक क्षण के लिए चुप्पी व्याप जाती है।)

(कुछ देर बाद) जानना चाहती हो ?

नगीना : हूँ....

मिर्जा : (गम्भीरता का अभिनय करते हुए) वह एक रोशनी है....

नगीना : रोशनी....? (न समझने का भाव लेकर) क्या मतलब ?

मिर्जा : मतलब तो बिल्कुल साफ है, नगीना !

(मिर्जा शायराना अन्दाज़ से छत की ओर दृष्टि डालकर कुछ सोचने लगते हैं। उनकी दृष्टि एक-एक कर छत पर टँगे तीनों झाड़-फानूसों में उलझ जाती है। नगीना मिर्ज़ा की

---

१. वह मेरे पड़ौस में आ रहा, तो उसकी महिमा से उसके द्वार और दीवार पर दूसरे द्वार और दीवार बिल्कुल विमुग्ध हो रहे हैं।

ओर विस्मय और जिज्ञासा भरी दृष्टि से देखती रहती है। कुछ ही क्षणों में मिर्जा की दृष्टि घूमती-घूमती नगीना पर आ टिकती है।)

सुनो....(बहुत धीमे स्वर में) हमारे दिल के आइने में उस रोशनी का तेज अक्स पड़ रहा है....

(सहसा वीणा के तार हल्के-से टनटना उठते हैं, जो नगीना के हृदय में उत्पन्न पुलक और झंकृति को प्रकट करते हैं।)

नगीना : (आश्चर्य में पड़कर) मगर....वह रोशनी है किसकी ? कैसी है ?

मिर्जा : (अन्दाज के साथ) वह रोशनी है नगीना की, जो खुद ही अपने में एक लाजवाब चमक समेटे हुए है।

(वीणा के तार एक साथ झनझना उठते हैं। नगीना के हृदय में अत्यधिक प्रसन्नता के कारण धड़कनें बढ़ जाती हैं।)

नगीना : (उछलते हुए हृदय को छिपाते हुए) हटिए....

(शर्मा जाती है। पतले चमचमाते जरीदार दुपट्टे से मुँह छुपा लेती है।)

मिर्जा : (चौंककर) अरे....रे क्या कर रही हो, नगीना ! मुँह न छुपाओ....देखो तुम्हारी पेशानी पर चमकते मोती मिट जाएँगे....

(नगीना मुँह नहीं उठाती।)

नगीना....! (रुककर) क्यों....अपनी तारीफ़ से रूठ गई ?

(चंचल वाद्य-ध्वनियाँ एक क्षण के लिए उभरती हैं, फिर तत्क्षण शान्त हो जाती हैं। नगीना चेहरा उठाती है। मिर्जा ने देखा—नगीना

का चेहरा कानों तक लाल हो गया था।)

नगीना : ऊँह....हूँ....

"है और भी दुनिया में सुखनवर बहुत अच्छे।
कहते हैं कि 'गालिब' का है अन्दाज़े-बयाँ और।।"[1]

मिर्जा : बहुत खूब....(रुककर) लेकिन तुमसे ज़्यादा नहीं....

(दोनों हँस पड़ते हैं।)

नगीना : (मीठी हँसी के साथ) बहुत सुना था—'गालिब' का है अन्दाज़े-बयाँ और....(रुककर) नज़दीक आकर ही जाना कि जैसा सुना—वैसा ही था, बल्कि....

मिर्जा : (बात काटकर) छोड़ो भी इन बातों को....(रुककर) तारीफ़ ही करती रहोगी या कुछ पिलाओगी भी ?

नगीना : क्यों नहीं, सरकार ! (पुकार कर) नूर....

(दूसरे ही क्षण दरवाज़े का पर्दा हटाकर नूर प्रवेश करती है।)

नूर : जी....सरकार !

(नगीना आँख से उसे शराब लाने का संकेत करती है।)

(संकेत समझकर) जी....बहुत अच्छा !

(दूसरे ही क्षण नूर मिर्जा के सामने एक सुन्दर सुराही तथा प्याला लाकर रख देती है। नगीना सुराही से शराब उँड़ेलकर प्याला भरती है।)

नगीना : (प्याला मिर्जा की ओर बढ़ाते हुए) लीजिए....

मिर्जा : (हाथ बढ़ाकर) लाओ....

---

१. कविराज तो संसार में एक-से-एक हैं; पर, मर्मज्ञों का कहना है कि 'ग़ालिब' की कविताई की सुघराई–बड़ाई कुछ और ही है।

(प्याला लेकर मिर्जा उसे तुरन्त ओठों से लगा लेता है ।)

(पीकर) आज बहुत दिन बाद यह ज़ायका मिला है····

(नगीना का एक हाथ अभी भी सुराही पर टिका है)

नगीना : एक बात पूछूं ?

मिर्जा : (प्याला बढ़ाकर) जरूर····

(नगीना सुराही उठाकर प्याला भरने लगती है।)

नगीना : (प्याला भरती हुई दृष्टि झुकाए झुकाए ही–) इतने दिन कहाँ रहे, आप ? (मीठी आवाज़ में) हम तो आपके दीदार को तरस कर रह गए थे····(शिकायत भरे अन्दाज़ में) न जाने क्या-क्या ख्यालात उठने लगे····कितने-कितने वहम····

मिर्जा : (प्याला उठाते हुए) यों ही····कोई खास बात नहीं थी !

(मिर्जा के मुख से एक निश्वास निकल जाती है।)

नगीना : (उड़ती सी नज़र मिर्जा पर डालते हुए) ऊँह····हूँ···· जरूर कोई खास बात ही रही होगी····नहीं तो आप इतने दिन रुकने वाले नहीं हैं····

(सहसा नगीना की दृष्टि चोगे के बटन खुल जाने से बाहर निकल आए मिर्जा के कुर्ते के पल्लू में गाँठ बँधी देखकर चौंक पड़ती है ।)

(चौंककर विस्मय भरे स्वर में) अरे····यह क्या····? आपके कुर्त्ते के पल्लू में यह गाँठ कैसी····?

नगीना : (एकटक मिर्जा की ओर देखती हुई) अरे····आप फिर किस सोच में डूब गए····?

(मिर्जा विचारों में डूबे हुए होने से नगीना की वात नहीं सुन पाए, अतः वैसे ही बैठे रहे ।)

(कंधा झकझोरते हुए) मिर्जा साहब····क्या सोचने लगे ?

मिर्जा : (गम्भीर स्वर में, मानो नींद से जागे हों) आँ····कुछ भी तो नहीं, नगीना ! (रुककर) यूँ ही····जरा अपनी नज़्म की दाढ़ी सुलझा रहा था········ कम्बख़्त ऐसी उलझी—ऐसी उलझी कि सुलझ ही नहीं पा रही है····

नगीना : नज़्म की दाढ़ी····

(हँस पड़ती है ।)

मिर्जा : तुम हँस रही हो ? (न समझने का भाव प्रकट करते हुए) मगर इसमें हँसने की क्या बात है ?

(नगीना फिर भी खिलखिलाकर हँसे ही जा रही थी ।)

(खीझकर) अजीब बात है····इस तरह हँसने का भला क्या तुक है ?

नगीना : (हंसते हुए) हुजूर ! होश में भी हैं या नहीं····? (रुककर) अजी जनाब ! नज़्म तो औरत जात है भला औरत के भी दाढ़ी हो सकती है ?

(फिर से वह खिलखिला पड़ती है ।)

मिर्जा : (सोचते हुए) नज़्म औरत जात होती है····(फुसफुसाते हुए) औरत जात····(रुककर) अमां····नगीना ! तुम इतना भी नहीं जानती ?

नगीना : (हँसी रोककर) क्या मतलब ?

मिर्जा : मतलब ? (रुककर) मतलब तो बिल्कुल साफ है···· अरे भई ! लफ्ज़ों के बिना नज़्म कैसे बन सकती है

....(रुककर अन्दाज़ भरे स्वर में) लफ्ज़ तो मर्द हैं....

(मिर्जा 'हो-हो' कर जोर से हंस पड़ते हैं।)

(हँसते हुए) इसी बात पर यह जाम खाली करता हूँ....

('गट्-गट्' कर हाथ का जाम खाली कर देते हैं।)

मिर्जा : (कुर्ते की बंधी गांठ की ओर देखकर) यह गाँठ....

(याद करने का प्रयत्न करते हैं।)

ओह....हाँ....याद आया....(रुककर एक ही घूँट में जाम खाली कर रखते हुए) तुम जब नाच रही थी.... तो एक शेर दिमाग में आया....लिखने का वक्त तो था नहीं....सो गाँठ बाँध लिया....

नगीना : (हँसती हुई) बहुत खूब....

(दोनों ही तेज़ हँसी हँस पड़ते हैं।)

(मीठी हँसी के साथ) वह शेर सुनाएँगे नहीं ?

मिर्जा : (अपनी छोटी सी दाढ़ी पर हाथ फिराते हुए) सुनाउँगा क्यों नहीं ?

(एक क्षण के लिए वातावरण में शून्यता व्याप जाती है। मिर्जा का चेहरा गम्भीर हो जाता है। वे छत पर टंगे झाड़-फानूसों में दृष्टि फिराते हुए मानो कुछ खोज़ने का प्रयत्न करते हैं। नगीना उत्सुकता और विस्मय-मिश्रित भाव से मिर्जा को एकटक देखती रहती है।)

नगीना : याद नहीं आ रहा है ?

मिर्जा : (सोचते हुए) याद आ गया है....(भावों में डूबते हुए) महफ़िल की पुरजोर मस्ती झूम झूम जा रही थी....घुँघरुओं की एक-एक खनक के पीछे पर-

वानों के दिल लाख लाख अँगड़ाईयाँ ले रहे थे....
(रुककर) हम सब चुपचाप देख रहे थे....

(कहते-कहते मिर्जा की दृष्टि अपने को ताकती नगीना की दृष्टि से टकरा जाती है।)

हमारे दिल में ख्याल आया....यह घुंघरुओं की छमक.. यह 'वाह-वाह' के फिक़रे....यह कसी जाने वाली आवाज़ें....(शब्दों पर जोर देते हुए) कुछ नहीं है....महज गरम तवे पर डाले गए ठण्डे पानी की 'छम्म' की आवाज़ है.... (व्यथित होकर) इन्सान की मज़बूरियों की कराह है....और कुछ नहीं....

(मिर्जा के मुँह से निश्वास निकल जाती है।)

"आग से पानी में बुझते वक्त उठती है सदा।
हर कोई दरमाँदगी में नाले से लाचार है॥[१]"

नगीना : (भाव विभोर होती हुई) सुभान अल्लाह....(मुग्ध भाव से मिर्जा को देखती हुई) आपके दिल में इन्सानियत के लिए कितने बुलन्द ख्याल हैं....आप दरिया हैं....

मिर्जा : दरिया....

(मिर्जा हंस पड़ते हैं।)

मिर्जा प्याला आगे सरका देते हैं। नगीना फिर से प्याला भर देती है।)

(एक घूँट पीकर जायका लेते हुए) तुमने हमें दरिया कहा, नगीना! (रुककर) जानती हो, यह दरिया कैसा है?

---

१. पानी में बुझते वक्त आग से 'छन्न' की आवाज निकलती है कि नहीं, विपत्ति में सभी चीख-पुकार लगाते हैं, विवश होकर।

नगीना : जानती हूँ····(रुककर) यह एक ऐसा दरिया है···· ऐसा समन्दर है, जिसमें इन्सानियत के अनगिनत बुलबुले हैं····! ज़िन्दगी की हसीन मौजें जिसमें हर वक्त खेलती रहती हैं....(कल्पना में डूबती हुई) तसव्वुर की तितलियाँ जिसके इर्द-गिर्द मंडराती हैं....

(संगीत की मंद-मंद ध्वनियाँ नगीना के इस संवाद के पार्श्व में चलती रहती हैं। मिर्जा नगीना की बातें सुनते हुए धीरे-धीरे शराब पीते रहते हैं।)

मिर्जा : नहीं....(घूँट का जायका लेते हुए) तुमने हमें वाकई देखा नहीं है····पहिचाना नहीं है। (रुककर) इस दरिया में झाँककर गौर से देखोगी तो तुम्हें वहाँ कुछ और ही देखने को मिलेगा····

नगीना : क्या मतलब ?

मिर्जा : (लम्बी श्वांस लेकर गम्भीर स्वर में) सच तो यह है, नगीना ! (एक घूँट शराब पीकर) यह समुन्दर सूखा है—बिल्कुल सूखा····

नगीना : (विस्मय में भरकर) मैं कुछ समझी नहीं····

मिर्जा : (फीकी हँसी हंसते हुए) सब समझ जाओगी········ (रुककर) यकीन करो, नगीना ! यह दरिया बिल्कुल सूखा है····। यह अपनी ही प्यास नहीं बुझा पाता····। कहने को इसमें पानी है····दीखने को उसमें बेपनाह पानी है····(रुककर) मगर कोई चखकर देखे तो जाने—दरिया में लहराती····ठाठें मारती वह तूफ़ानी मौज़ें कितनी-कितनी कड़वी हैं····

(मिर्जा एक ही घूँट में प्याले की शेष शराब खत्म कर प्याला रख देते हैं। एक साथ सारी शराव पी लेने से मिर्जा का सारा मुँह उसकी कड़वाहट से भर उठता है।)

(मुँह विगाड़ते हुए) वह कड़वाहट····ज़िन्दगी को दोज़ख बना देती है।

(पार्श्व में हलचल भरा संगीत ध्वनित होता है, जो मिर्जा के मन में उठने-गिरने वाले उद्वेलन की सूचना देता है।)

नगीना : (सहानुभूति के स्वर में) आपके दिल में इतना दर्द···· इतनी टीस····? (रुककर) क्या वात है ? मुझे नहीं बताएँगे ?

(मिर्ज़ा का चेहरा बहुत गम्भीर हो जाता है। वे खामोशी से छत पर की गई नक्काशी को देखते रहते हैं।)

मिर्जा : (गम्भीर स्वर में) यह ज़िन्दगी दरअसल दर्द से भीगी एक ऐसी शाम है, जो न कभी ख़त्म होती है और न ही उजाले को पकड़े रख पाती है····

(मिर्जा के मुख से एक लम्वी निश्वास निकल जाती है।)

(बात टालने के उद्देश्य से) छोड़ो, नगीना ! इन सब बातों को····(लापरवाही के भाव से) ज़िन्दगी के सफ़र में उतार-चढ़ाव चलते ही रहते हैं।

"दिल, नहीं तुझको दिखाता वर्न, दागों की बहार।
इस चरागाँ का करूँ क्या,कारे फरमा जल गया।।"[1]

---

१. काश ! मैं तुझे दिखला सकता। मेरा दिल दागों से भरा वगीचा बना हुआ है। तू दीवाली देखना चाहता है ? आह, मैं असमर्थ हूँ, दिल मेरा जल गया अन्यथा दिखलाता तुझे दीप्त-दागों की दीवाली।

(कहते-कहते मिर्जा के चेहरे पर पसीने की बून्दों के साथ ही साथ व्यथा की रेखाएं उभर आती हैं, जिन्हें देखकर नगीना का मन भी पीड़ित हो उठता है।)

नगीना : (भीगे कण्ठ से) आज आपकी तबीयत ठीक नहीं लगती····(रुककर) आपको कुछ देर आराम करना चाहिए····आइए मेरे साथ !

(नगीना उठने का प्रयत्न करती है।)

मिर्जा : (न समझने का भाव लिए) कहाँ ?

(नगीना उठ खड़ी होती है।)

नगीना : (मिर्जा का हाथ पकड़ कर) आप उठिए भी तो····

मिर्जा : मगर····मुझे आखिर कहाँ ले जाना चाहती हो ?

(नगीना के सहारे ही उसका हाथ पकड़े मिर्जा उठ खड़े होते हैं। नशे के आवेग तथा भावावेश के कारण उठते समय वे कुछ लड़खड़ा-से जाते हैं।)

नगीना : (मिर्जा को थामती हुई) देखिए····सम्हलकर···· (रुककर) मेरा हाथ अच्छी तरह थाम लीजिए····

(मिर्जा का हाथ थामकर भीतर के लिए बने दरवाज़े की ओर बढ़ती है। मिर्जा कठपुतली की तरह पीछे-पीछे खिंचे चले जाते हैं।)

मिर्जा : तुम····नगीना ! दरिया को थाम लेना चाहती हो ?

(नगीना रुकती नहीं, चलती रहती है।)

नगीना : (चलते चलते ही) आप भूलते क्यों हैं, मिर्जा साहब ? दरिया को उसकी मिट्टी भरी किनारियाँ ही तो थाम कर रखती हैं····वही उसका दायरा तय कर देती हैं····

पर्दा हटाकर नगीना के पीछे-पीछे मिर्जा भीतर शयनागार में पहुँचते हैं। भीतर की सजावट बहुत ही सुन्दर है। इधर-उधर बारीक रंग-विरंगे पर्दे पड़े हैं। फर्श पर कीमती कालीन बिछा है। पलंग के सिरहाने सुनहरे काम की तिपाईनुमा मेज रखी है, जिस पर खूबसूरत फूलदान सजाकर रखा गया है। दीवारों पर तरह-तरह के चित्र अंकित किए गए हैं। छत पर वैसी ही नक्काशी की गई है तथा बीचों-बीच एक बहुत बड़ा फानूस लटक रहा है। भीतर सब कुछ शान्त और मूक है। नगीना मिर्जा को पलंग पर लेटाने का प्रयत्न करती है।)

मिर्जा : यहाँ की खामोशी में कितनी खूबसूरती बिखरी है....

(मिर्जा कमरे की सजावट को देखते हैं।)

नगीना : कुछ देर यहाँ लेटे रहिए....

(मिर्जा बिस्तर पर तकिए के सहारे लेट जाते हैं। उनकी दृष्टि लेटे-लेटे ही छत से लटके फ़ानूस के एक-एक हिस्से पर घूम जाती है।)

चुपचाप आराम करने से दिल को कुछ सकून मिलेगा....

मिर्जा : (सोचते हुए गम्भीर स्वर में) सक़ून....? (बड़बड़ाते हुए) हाँ....याद आया....मैं सक़ून की तलाश में ही तो यहाँ तक चलकर आया था....(लम्बी श्वास लेकर) सक़ून....

(सहसा पार्श्व में हलचल भरा संगीत उभरता

है, जिसमें मिर्जा के मन का संघर्ष और भी तीव्र हो जाता है। मिर्जा को भावावेश में कमरे की खामोशी में 'घन्....घन्' की आवाज़ सुनाई पड़ने लगती है। जिसके बीच उनकी कल्पना में उमराव वेगम की सिसकियाँ तथा रुदन के बीच कही गई आवाजें गूँज-गूँज उठती हैं—)

(सिसकियों के साथ) यह अकेला-सूना घर हमें काटने को दौड़ता है। (खीझकर) यहाँ कहीं कोई हलचल नहीं....कोई शोर-शराबा नहीं....किसी की ज़िद्द नहीं....किसी की किलकारी....(चौंककर) उई अल्ला....

(एक तेज झनझनाहट, तेज सिसकियाँ। फिर वही झनझनाहट की आवाज़।)

"यह क़ैदखाने की-सी ऊँची-ऊँची दीवारें....यह अंधेरा....गहरा सन्नाटा....यह सब कितना अच्छा है....? वहुत सकून मिलता है मुझे इन सबसे....। जिस ओर देखती हूँ—नजरें खाली-खाली ही सामने से लौटकर मेरे पास चली आती हैं....मेरी आवाजें अपनी ही गूँज से टकरा-टकराकर खुश हो लेती हैं....।"

(तेज झनझनाहट गूंज-गूंज कर मानो मिर्जा ग़ालिव को चारों ओर से घेर लेती हैं। रह-रहकर मिर्जा की कल्पना में उमराव की सिसकियों और रुदन के वीच कही गई वातों के टुकड़े एक-दूसरे से टकरा उठते हैं—)

"....यह क़ैदखाने की-सी ऊँची-ऊँची दीवारें....यह अंधेरा...." (तेज हलचल)

"यह दीवारें····यह अंधेरा····सन्नाटा···दीवारें····
अंधेरा····"

(भयंकर हलचल मिर्जा के मस्तिष्क और मन में उठती है। भावावेश में मिर्जा को लगता है, जैसे छत से लटक रहा फानूस तेजी से गोलाकार घूम रहा है। धीरे-धीरे सारा कमरा ही घूमता-सा लगता है, जिसमें नगीना भी चक्कर काटती दीख पड़ती है। मिर्जा पागलों की-सी हरकतें करते हुए उठने का उपक्रम करते हैं।)

मिर्जा : (घबराए हुए तेज आवाज में) अरे····नगीना····यह फ़ानूस····यह कमरा घूम रहे हैं····और तुम भी····(आश्चर्य से) अरे····यह सब क्या हो रहा है····?

(नगीना मिर्जा में हुए इस आकस्मिक परिवर्तन से सहसा घबरा जाती है। वह उठते हुए मिर्जा को लिटाने की चेष्टा करती है।)

नगीना : (भयातुर होकर) मिर्जा साहब····क्या बात है····?

(मिर्जा ने जैसे कुछ भी नहीं सुना हो।)

(तेज स्वर में) मिर्जा साहब····

(मिर्जा के मन की हलचल और भी तीव्र हो जाती है।)

मिर्जा : (फुसफुसाते हुए) अंधेरा····सन्नाटा····(हाँफते हुए) सचमुच हम एक गहरे अंधेरे से घिरते जा रहे हैं····

(मिर्जा भावावेश में तेजी से हाँफने लगते हैं। परेशानी तथा नशे के आधिक्य के कारण उनके चेहरे पर पसीना छलक आता है। वे पागलों की भाँति इधर-उधर दृष्टि डालते हैं)

(चौंककर) अरे····यह क्या? यह चारों ओर अन्धेरा ही अन्धेरा····! अन्धेरे का बहुत बड़ा सैलाब उमड़ रहा है········इसने हमें चारों ओर से बुरी तरह घेर लिया है········

(हलचल भरा संगीत पार्श्व में चलता रहता है।)

(नगीना डर जाती है। वह हाँफते हुए मिर्जा की छाती सहलाने लगती है।)

नगीना : (घबराए स्वर में) मिर्जा साहब····आपको क्या हो रहा है····(कातर होकर) मिर्जा साहब! मिर्जा साहब····! सुन रहे हैं आप?

(मिर्जा का कंधा पकड़कर झकझोर देती है। मिर्जा को एक क्षण के लिए जैसे कुछ होश आता है। वे सम्हलने का प्रयत्न करते हैं।)

मिर्जा : (होश में आते हुए से) आं····

(पागलों की सी हरकतें करते हुए उठने का उपक्रम करते हैं, किन्तु नगीना उन्हें पुनः लिटा देती है—)

नगीना : उठिए मत····लेटे रहिए····

(मिर्जा निढ़ाल होकर बिस्तर पर लुढ़के रहते हैं।)

मिर्जा : अंधेरा····सन्नाटा····(आँखें खोलने का प्रयत्न करते हुए) तुम····नगीना? (सहसा आवेश में आकर) मगर यहाँ क्यों खड़ी हो····

नगीना : (आश्चर्य में भरकर) क्या मतलब····

मिर्जा : (अपने ही ध्यान में) तुम अभी भी यहीं खड़ी हो···· भागी नहीं? (तीव्र स्वर में) भागो, नगीना! भागो यहां से····

नगीना : (चौंककर) यह आप क्या कह रहे हैं, मिर्जा साहब !' (रुककर) भागूँ····कहाँ····क्यों····?

(अत्यधिक घबराहट के कारण नगीना का चेहरा पसीना-पसीना हो जाता है। उसकी देह काँपने लगती है। वह काँपते हाथों से मिर्जा को सम्हालने की असफल चेष्टा करती है। मिर्जा नगीना के थरथराते हाथ को एक ओर खिसकाकर इधर-उधर अधमुँदी आँखों से देखने का प्रयत्न करते हैं।)

मिर्जा : (हांफते हुए) देखती नहीं····चारों ओर अंधेरे का काला सैलाब उमड़ आया है····

(चारों ओर घिर आए काले सैलाब की ओर इंगित करते हुए मिर्जा के हाथ उठते हैं। सहसा उन्हें लगता है, जैसे लटकता हुआ फानूस भी उस सैलाव में डूब रहा है तो वे चौंक पड़ते हैं।)

(चौंककर) अरे····इधर देखो, नगीना ! वह फ़ानूस भी काले सैलाब में डूबने लगा है····(डरते हुए) हम भी डूब जाएँगे··· भागो····(चीखती हुई आवाज़ में)

नगीना : (घबराती हुई) या खुदा ! इन्हें क्या हो गया है ?

(नगीना की आवाज़ पीड़ा की अधिकता से भीग जाती है। उसका स्वर रुँआसा होने लगता है।)

(रुँआसी होकर) कहीं यह पागल तो नहीं हो गए हैं···· ?

(मिर्जा की साँस फूल जाती है।)

मिर्जा : (हाँफते हुए) नगीना····

नगीना : (मिर्जा की छाती सहलाते हुए) क्या बात है··· आपको क्या हो गया है ?

(रुककर) मिर्जा साहब !

(मिर्जा को अब कुछ होश आने लगता है, किन्तु वे अभी भी हाँफ रहे हैं। वे आँखें खोलते हुए अपने आस-पास के वातावरण को समझने का प्रयत्न करते हैं।)

मिर्जा : (हाँफते हुए) मुझे····(बहकी हुई आवाज़ में) कुछ भी तो नहीं हुआ····कुछ भी तो नहीं····

(मिर्जा तकिए के सहारे उठने का प्रयत्न करते हैं। नगीना सहारा देकर उन्हें तकिए के सहारे बैठा देती है।)

नगीना : (आश्चर्य में) कुछ भी नहीं हुआ······· ? (रुककर) फिर यह पागलपन····यह बहकी-बहकी बातें कैसी ? चेहरे पर छलक आया यह पसीना····

मिर्जा : (हाँफते हुए) बहकी-बहकी बातें····छलक आया यह पसीना····

(मिर्जा मानो कुछ याद करने की चेष्टा करते हैं, पर जैसे कुछ भी याद नहीं पड़ रहा है। इससे मिर्जा कुछ खीझ से उठते हैं।)

(खीझते हुए) क्या था, यह सब ? कुछ भी तो याद नहीं पड़ता····

(नगीना के हृदय में मिर्जा की पीड़ा के प्रति सहानुभूति के भाव उमड़ पड़ते हैं। वह एकाध क्षण तक नेत्रों में संवेदना का भाव लिए मिर्जा की ओर देखती रहती है। इससे वातावरण की बोझिलता और शून्यता बढ़ जाती है।)

नगीना : (सहानुभूति के स्वर में) आप मुझसे अपने दिल का दर्द छुपा रहे हैं····शायद····

मिर्जा : नहीं तो नगीना !

(तकिए का सहारा अच्छी तरह लेकर मिर्जा बैठ जाते हैं ।)

(गम्भीर होकर) तुमने मुझे दरिया कहा था न....? (एक क्षण रुककर) दरिया में कभी-कभी तूफ़ान आ ही जाता है ।

नगीना : (अधिकार पूर्ण स्वर में) देखिए....मिर्जा साहब ! अब आप और नहीं टाल पाएँगे....(रुककर शब्दों पर ज़ोर देते हुए) अब तो आपको सब कुछ बतलाना ही होगा....

(अब तक मिर्जा अपनी स्थिति को काफी सम्हाल लेते हैं ।)

मिर्जा : छोड़ो भी, नगीना ! ग़म और परेशानियों को हम अपने से जितना ही दूर रखेंगे, अच्छा ही रहेगा ।

(बातचीत के प्रसंग को बदल देने के उद्देश्य से मिर्जा इधर-उधर देखते हैं ।)

लाओ, और पिलाओ ! (इधर-उधर देखते हुए) मेरा प्याला....

नगीना : (बीच ही में) वह तो बाहर ही रह गया है....

मिर्जा : अरे, तो मंगवाओ भई....(रुककर)बेचारा प्याला कब से खाली पड़ा सुराही के छलकने का इन्तज़ार कर रहा होगा....

नगीना : ऊँह....हूँ....(रुककर) पहले मेरी बात का जवाब दीजिए....

मिर्जा : जवाब....? (हँस पड़ते हैं) मैं क्या जवाब दूं.... नगीना ! तुम अपने आप में लाजवाब हो.... (रुककर) लाज़वाब का जवाब भला कैसा ?

(मिर्जा की तेज हँसी शान्त वातावरण में गूँज उठती है।)

नगीना : (गम्भीर स्वर में) इस तरह हँसी में आप मेरी बात का जवाब टाल नहीं सकते····(रुककर) मैं सब कुछ जान लेना चाहती हूँ····(तीव्रता के साथ) आपको मेरे सिर की कसम, जो कुछ भी छुपाया तो····

(हलचल भरे वाद्य-स्वर मुखरित हो उठते हैं, उनके साथ ही साथ मिर्जा के मन की हलचल भी तेज हो जाती है। उनके चेहरे पर बिखरी हँसी नगीना की कसम से सहसा गायब हो जाती है।)

मिर्जा : (सहसा गम्भीर होकर) यह क्या किया तुमने, नगीना कसम दिलाकर हमें मजबूर क्यों कर रही हो····?

(एक क्षण के लिए मिर्जा आवेश में जड़ से बनकर कुछ सोचने लगते हैं। नगीना मिर्जा के चेहरे पर उभरती-मिटती विचारों की विभिन्न रेखाओं को पढ़ने का उपक्रम करती है, पर सफल नहीं हो पाती।)

नगीना : (व्यग्रतापूर्वक) कहिए न····चुप क्यों हो गए ! क्या सोचने लगे हैं आप ?

(एक क्षण चुप्पी ही रहती है।)

मिर्जा : (गम्भीर और भारी स्वर में)
'कहूँ किससे मैं कि क्या है, शबे-गम बुरी बला है।
मुझे क्या बुरा था मरना, अगर एक बार होता।।[1]'

---

१. 'वियोग की रात कैसी होती है,' मैं किसको बतलाऊँ ? बार-बार दर्शन, बार-बार मरण। इससे तो कहीं अच्छा होता, एक ही बार, हमेशा के लिए शान्त हो जाना।

(नगीना स्तब्ध-सी मूर्ति की तरह बैठी रह जाती है, कुछ सोच नहीं पाती—'क्या करे ?'')

नगीना : (भीगी आवाज़ में) मेरे सरकार !

(नगीना के मुँह से लम्बी निश्वास निकल जाती है।)

ज़िन्दगी की तल्ख़ियों में मुझे भी अपनी भागीदार बनालें....

(गम्भीर टनटनाहट के स्वर उठते हैं—गिरते हैं, जो वातावरण को और भी बोझिल और गम्भीर बना देते हैं।)

मिर्जा : (भारी कण्ठ से) नगीना ! (रुककर) ज़िन्दगी की यह तल्ख़ियाँ इस क़दर हमें तोड़कर रख देती हैं कि फिर हम सम्हलने की लाख कोशिश ही क्यों न करें....सम्हल नहीं पाते....

नगीना : (भीगी आवाज़ में) आखिर वह बेबसी क्या है.... सुनूँ तो....!

मिर्जा : (कुछ सोचते हुए) बेबसी....? (शायराना अन्दाज़ में) बस बेवसी-बेबसी ही है....उसका क्या इलाज़ हो सकता है ?

नगीना : फिर भी....कुछ तो मालूम हो।

मिर्जा : (निश्वास लेकर) क्या करोगी, नगीना ! सुनकर....
'किससे महरूमि-ए-किस्मत की शिकायत कीजे।
हमने चाहा था कि मर जाएँ, सो वो भी न हुआ।।[1]''

(नगीना का नारी-हृदय मिर्जा की इस करुणा-भरी पुकार से पीड़ित हो उठता है। वह अत्य-

---

१. अपनी भाग्यहीनता की शिकायत करें तो किससे ? हमने तो मर जाने का संकल्प किया था, पर हाय ! वह भी सम्भव न हो पाया !

धिक भावुक हो चलती है।)

नगीना : (भीगे गले से) इतने मायूस क्यों होते हैं, मिर्जा साहब ? आपकी दरियादिली····मस्ती····और मज़ाकिया आदत के चर्चे हो रहे हैं····और आप हैं कि····

मिर्जा : (बात काटकर) तुम नहीं जानती, नगीना ! अगर हमारी मज़बूरियों का जरा-सा भी एहसास तुम्हें होता तो ऐसी बात नहीं कहती····

नगीना : सरकार ! मैं अपनी ज़िन्दगी का हर खुशनसीब ख़्वाब देकर भी आपकी सारी मजबूरियाँ खरीद लूँगी····

मिर्जा : (चौंककर) नगीना····

(मिर्जा के मन में हलचल-सी मच जाती है। वे कृतज्ञताभरी दृष्टि से नगीना को देखते रहते हैं।)

तुम····? (फुसफुसाकर) यह तुम कह रही हो, नगीना !····(रुककर) नहीं····नहीं····ऐसा मत कहो····

'बाग में मुझको न ले जा, वर्नः मेरे हाल पर,
हर गुले-तर एक चश्मे-खूँफिशाँ हो जाएगा।'[1]

(एक क्षण के लिए निस्तब्धता व्याप जाती है, जिसमें यदा-कदा सितार के तार टनटना उठते हैं।)

नगीना : (व्यथित होती हुई) ऐसी बुरी बात क्यों मुँह से निकालते हैं····? (रुककर) ज़िन्दगी उतार-चढ़ावों

---

१. माफ़ कर ! मुझे बाग में न ले जा ! नहीं तो, मेरी दुर्दशा देखकर हर एक गुलाब की आँख में खून का आँसू उतर जाएगा।

का ही नाम होती है। ऐसे छोटे-मोटे उतार-चढ़ाव तो आते ही रहते हैं....

मिर्जा : तुम नहीं जानती, नगीना ! कुछ भी नहीं जानती.... (अपने आप ही बड़बड़ाते हुए) जान भी नहीं सकती.... (भीगी आवाज़ में) यह दिल भीतर ही भीतर खोखला हुए जा रहा है।

नगीना : मिर्जा साहब !

मिर्जा : (अपनी ही धुन में) कोई इस दिल में झाँककर देखे तो पता चले, इसमें कितने-कितने ज़ख़्म बन गए हैं....

नगीना : ऐसा मत कहिए, सरकार ! मुझे अपने दिल का सब दर्द खुलासा कर बतलाइए....

(एक क्षण के लिए निस्तब्धता व्याप जाती है, जिसमें यदा-कदा सितार के तार टनटना उठते हैं।)

मिर्जा : (नगीना को देखते हुए निश्वास लेकर—) तो तुम नहीं मानोगी, नगीना ?

नगीना : दिल में छुपाकर रखा दर्द खोल देने से ग़म का बोझ कुछ हल्का हो जाएगा, वरना दिल की तनहा दीवारों से टकरा-टकरा कर छुपाया गया दर्द और भी ज़्यादा उथल-पुथल मचा देगा....

मिर्जा : (विवश स्वर में) जानना ही चाहती हो, नगीना.... तो सुनो....

"ग़म से मरता हूँ, कि इतना नहीं दुनिया में कोई,
कि करे ताज़ियते-महरो-वफ़ा मेरे बाद।[१]"

---

१. मेरे बाद दयामया की मातमपुरसी करने वाला, उनके नाम को रखने वाला, कोई रह नहीं जाएगा। मैं इसी दुःख से मरा जा रहा हूँ।

(वीणा के सब तार एक साथ झनझना उठते हैं।)

नगीना : (झनझनाहट और अपने हृदय की उथल-पुथल के बीच) या खुदा....

मिर्जा : बस....? सुनकर ही घबरा गई? (रुककर) यहाँ तो दर्द और ग़म के प्याले पर प्याले हलक में उँड़ेले जा रहे हैं....

नगीना : (व्यथित होकर) वाक़ई ज़िन्दगी की तल्ख़ी किसी क़हर से कम नहीं है। (रुककर) लेकिन अभी से ही आप इतना मायूस क्यों होते हैं? अभी तो बहुत ज़िन्दगी बाकी है। (निश्वास लेकर) ज़िन्दगी के सफ़े कब पलट जाएँ....कुछ नहीं कहा जा सकता।

(गम्भीर वाद्य-स्वर ध्वनित होकर वातावरण की बोझिलता और गम्भीरता को प्रकट करते हैं।)

मिर्जा : (भारी आवाज़ में) तुम नहीं जानती, नगीना! उम्मीदों का दीया जलाने की लाख-लाख कोशिशें की हैं....(रुककर) वह जल-जलकर बुझा है....बुझ-बुझकर जला है....(रुँधे कण्ठ से) मगर बदनसीबी का अंधेरा इतना गहरा—इतना गहरा है कि उसने उस दीये की काँपती लौ को बेरहम होकर निगल लिया है....

(कहते-कहते मिर्जा की आवाज़ भीग जाती है।)

(अधीर होकर) और हम उस अन्धेरे में इधर से उधर भटक रहे हैं, पागलों की तरह! टटोलकर उस अन्धेरे में कुछ पा लेना चाहते हैं....मगर....

हमें कुछ नहीं मिलता....! मिलती है—सिर्फ़ मायूसी....तल्खी और अन्धेरा....गहरा अन्धेरा....

(मिर्जा के इस कथन के पार्श्व में मंद और गम्भीर वाद्य-स्वर चलते रहते हैं।)

नगीना ! हमें कभी-कभी ऐसा महसूस होने लगता है कि वह अन्धेरा हमारी नस-नस में समा गया है....खून के एक-एक क़तरे में मिल गया है—एक हो गया है। (रुँधी आवाज़ में) अब लाख उम्मीद के दीये जलाए जाएँ, मगर हमारी नसों में, हमारे खून के एक-एक क़तरे में समाया हुआ वह अन्धेरा अब नहीं मिट सकता....नहीं मिट सकता....

(गम्भीर वाद्य-ध्वनियाँ एक क्षण के लिए तीव्र हो उठती हैं, जिनमें मिर्जा का स्वर दब जाता है।)

नगीना : (दुखी होते हुए) नहीं....नहीं....ऐसा मत कहिए.... (संवेदना भरें शब्दों में) इतना मायूस मत होइए....

मिर्जा : (निश्वास लेकर)

'जख्मे दिल तुमने दुखाया है कि जी जाने है।
ऐसे हँसते को रुलाया है कि जी जाने है॥"

नगीना : ऐसा क्यों कहते हैं ? (रुककर) आप ही ने तो कहा था....'शमाँ हर रंग में जलती है, सहर होने तक।' (अपने में ही डूबते हुए) शमाँ हर रंग में जलती

---

१. मेरे जख्मों (घावों) से भरे हुए दुखी मन को तुमने इस प्रकार पीड़ा पहुँचाई है कि बस मन ही जानता है। अपने मन के दुख को भुलाने के उद्देश्य से मैं हँस रहा था, पर तुमने हँसते-हँसते ही मुझे इस तरह रुला दिया कि बस क्या कहूँ ? कुछ कहते नहीं बनता। इस पीड़ा को तो मेरा मन ही जानता है।

है, सहर होने तक····(आवेश में) शमाँ जलेगी····आपकी नस-नस में समाये हुए वदनसीवी के उस गहरे अन्धेरे को मिटाने के लिए शमाँ को जलना होगा····

(पार्श्व में हल्का-हल्का संगीत उभरता है।)

(भावुकता भरे स्वर में) अव तक शमा परवानों को जलाती ही रही है····मगर अव वह जलाने के लिए नहीं जलेगी, वरना जलने के लिए जलेगी····(रुककर) जल-जलकर रोशनी देगी····

मिर्जा : जलने के लिए मैं ही काफी हूँ, नगीना ! मैं तुम्हें इस तवालत में नहीं घसीटना चाहता····नहीं····नहीं, विल्कुल भी नहीं ! (निश्वास लेकर) मेरे दिल में जिस मर्ज़ ने घर कर लिया है····वह लाइलाज़ है····

(मिर्जा भावावेश में नगीना के कंधे पर हाथ रख देते हैं।)

परवाने का काम ही जलना होता है। उसे जलने से कोई नहीं रोक सकता····कोई नहीं ! शमा को ही अगर परवाने के जलने की फिक्र हो तो वह शमा ही कैसी ? (रुककर) जो जलाए वही शमा है····

'परवाने का न ग़म हो तो फिर किसलिए 'असद',
हर रात शमअ शाम से ले ता सहर जले।''

१. ग़ालिब स्वयं से ही कहते हैं कि—'हे असद ! शमा को तो अपने पर मंडराने वाले तथा जल जाने वाले परवाने का दुख है। यदि ऐसा नहीं होता तो शमा हर रात्रि से लेकर सुवह होने तक क्यों जलती रहती ?

नगीना : (दृढ़ स्वर में) लेकिन परवाने को जलाने के साथ ही साथ शमा को भी जलना पड़ता है····वह जलने से बच नहीं सकती····। (रुककर) शमा का जलते रहना ही परवाने की जलनभरी बेकरारी का इलाज़ बन जाता है ।

मिर्जा : ठीक है····लेकिन हमारे मर्ज़ का इलाज़····

नगीना : (बात काटकर) नहीं····आप भूलते हैं ! (दृढ़ स्वर में) उसका भी इलाज़ है····।

मिर्जा : (चौंककर) यह तुम क्या कह रही हो, नगीना ? उसका इलाज़····

नगीना : जी हाँ····(शब्दों पर जोर देते हुए) उसका इलाज़ मैं हूँ····सिर्फ मैं ।

मिर्जा : (चौंककर) तुम····!

नगीना : जी····(रुककर) मैंने अभी कहा न कि शमा का जलते रहना ही परवाने की जलनभरी बेकरारी का इलाज़ बन जाता है····

मिर्जा : मैं कुछ समझा नहीं, नगीना ! खुलासा कहो····

नगीना : मिर्जा साहब !

(नगीना सम्हलकर बैठ जाती है ।)

(गला साफ़ करते हुए दृढ़ स्वर में) आपको ख़ान्दान के अंधेरे के लिए चिराग़ चाहिए····(रुककर) वह मैं देने को तैयार हूँ····

मिर्जा : (मानो आसमान से गिरते हुए) नगीना····

(उथल-पुथल की सूचक तेज ध्वनियाँ उठती गिरती हैं । मिर्जा अत्यधिक आश्चर्य के कारण पलंग से उठ खड़े होते हैं ।)

(स्तब्ध से) यह तुम कह रही हो····नगीना ?

नगीना : कोई भी नहीं जान पाएगा, मिर्जा साहब ! कि उस चिराग़ की रोशनी मेरी है····यकीन मानिए····

(मिर्जा स्तब्ध से खड़े एकटक दृष्टि से नगीना को देखते रहते हैं, नगीना भी। दोनों की दृष्टियाँ कुछ क्षण इसी प्रकार मिली रहती हैं।)

मिर्जा : पागल हो रही हो क्या, नगीना ? (रुककर) यह नहीं सोचा तुमने कि रोशनी तो फैल जाएगी मगर····

नगीना : (बात काटकर) मगर क्या ? (दृढ़ स्वर में) उस रोशनी को जलाने के लिए मैं जलूँगी····अपने हर रंग में ! (रुककर) जलती रहूँगी····जब तक सहर नहीं आ जाएगा····

(भावावेश में नगीना गुनगुनाने लगती है)

'शमा हर रंग में जलती है, सहर होने तक।'

मिर्जा : नहीं····नहीं, नगीना ! ऐसा नहीं हो सकता····

नगीना : हो सकता है····क्यों नहीं हो सकता ?

(नगीना उठकर खिड़की के पास जा खड़ी होती है, जहाँ से बाहर का दृश्य दीख पड़ता है।)

मिर्जा : मैं इतना खुदगर्ज़ नहीं बन सकता, नगीना !

(भारी कदमों से मिर्जा नगीना की पीठ की ओर बढ़ते हैं तथा नज़दीक जाकर रुक जाते हैं।)

(नगीना के कन्धे पर हाथ रखते हुए) मैं नहीं चाहता कि तुम्हें जलाकर तुम्हारी जलन से मैं अपना अंधेरा मिटा लूँ····(सावेश) नहीं····नहीं, नगीना। और फिर····

(मिर्जा के वाक्य पूर्ण करने से पूर्व सहसा नगीना पलटती है। मिर्जा कहते कहते रुक

जाते हैं ।)

नगीना : और क्या ? कहिए न····चुप क्यों हो गए ?

मिर्ज़ा : (भारी मन से) कुछ नहीं····

नगीना : कुछ तो है ही ! आप मुझसे कुछ छुपा रहे हैं···· (आग्रहपूर्वक) बतलाइए····

(मिर्ज़ा की दृष्टि अपने बहुत पास खड़ी नगीना पर जमी रहती है ।)

मिर्ज़ा : तुम····(अटक जाते हैं ।)

नगीना : कहिए न !

मिर्ज़ा : (संकोच भरे स्वर में) तुम····(अटकते हुए) तवायफ़ हो (रुककर) एक तवायफ़ की औलाद····

नगीना : (तीव्र स्वर में) मिर्ज़ा साहब····

(एक तेज धमाका । हलचल भरा संगीत उभरता है, जो मिर्ज़ा तथा नगीना के मन के तीव्र उद्वेलन को प्रकट करता है । नगीना की खूबसूरत आँखों में आँसू उमड़ आते हैं । वह दोनों हाथों से मुँह छिपाकर सिसक उठती है ।)

(रोते हुए) मिर्ज़ा साहब ! (सिसकती हुई) मैं पेशे से तवायफ़ हूँ···दिल से नहीं····

(नगीना फफक-फफककर रो पड़ती है ।)

मिर्ज़ा : अरे····नगीना····! मेरा मक़सद यह नहीं था····मैं तो दुनियादारी की बात कह रहा था····

(नगीना रोती रहती है ।)

(सांत्वना के स्वर में) नगीना ! सुनो तो····

(रोते-रोते नगीना अपने हाथों के बीच छुपे आँसुओं भरे मुखड़े को ऊपर उठाती है । मिर्ज़ा ने देखा नगीना की आँसू भरी आँखें रोने से लाल

नगीना : कोई भी नहीं जान पाएगा, मिर्जा साहब ! कि उस चिराग़ की रोशनी मेरी है····यकीन मानिए····

(मिर्जा स्तब्ध से खड़े एकटक दृष्टि से नगीना को देखते रहते हैं, नगीना भी। दोनों की दृष्टियाँ कुछ क्षण इसी प्रकार मिली रहती हैं।)

मिर्जा : पागल हो रही हो क्या, नगीना ? (रुककर) यह नहीं सोचा तुमने कि रोशनी तो फैल जाएगी मगर····

नगीना : (बात काटकर) मगर क्या ? (दृढ़ स्वर में) उस रोशनी को जलाने के लिए मैं जलूँगी····अपने हर रंग में ! (रुककर) जलती रहूँगी····जब तक सहर नहीं आ जाएगा····

(भावावेश में नगीना गुनगुनाने लगती है)

'शमा हर रंग में जलती है, सहर होने तक।'

मिर्जा : नहीं····नहीं, नगीना ! ऐसा नहीं हो सकता····

नगीना : हो सकता है····क्यों नहीं हो सकता ?

(नगीना उठकर खिड़की के पास जा खड़ी होती है, जहाँ से बाहर का दृश्य दीख पड़ता है।)

मिर्जा : मैं इतना खुदगर्ज नहीं बन सकता, नगीना !

(भारी कदमों से मिर्जा नगीना की पीठ की ओर बढ़ते हैं तथा नज़दीक जाकर रुक जाते हैं।)

(नगीना के कन्धे पर हाथ रखते हुए) मैं नहीं चाहता कि तुम्हें जलाकर तुम्हारी जलन से मैं अपना अंधेरा मिटा लूँ····(सावेश) नहीं····नहीं, नगीना। और फिर····

(मिर्जा के वाक्य पूर्ण करने से पूर्व सहसा नगीना पलटती है। मिर्जा कहते कहते रुक

जाते हैं ।)

नगीना : ग्रौर क्या ? कहिए न····चुप क्यों हो गए ?

मिर्जा : (भारी मन से) कुछ नहीं····

नगीना : कुछ तो है ही ! ग्राप मुझसे कुछ छुपा रहे हैं···· (आग्रहपूर्वक) वतलाइए····

(मिर्जा की दृष्टि अपने बहुत पास खड़ी नगीना पर जमी रहती है ।)

मिर्जा : तुम····(अटक जाते हैं ।)

नगीना : कहिए न !

मिर्जा : (संकोच भरे स्वर में) तुम····(अटकते हुए) तवायफ़ हो (रुककर) एक तवायफ़ की ग्रौलाद····

नगीना : (तीव्र स्वर में) मिर्जा साहव····

(एक तेज धमाका । हलचल भरा संगीत उभरता है, जो मिर्जा तथा नगीना के मन के तीव्र उद्वेलन को प्रकट करता है । नगीना की खूवसूरत आँखों में आँसू उमड़ आते हैं । वह दोनों हाथों से मुँह छिपाकर सिसक उठती है ।)

(रोते हुए) मिर्जा साहव ! (सिसकती हुई) मैं पेशे से तवायफ़ हूँ···दिल से नहीं····

(नगीना फफक-फफककर रो पड़ती है ।)

मिर्जा : अरे····नगीना····! मेरा मक़सद यह नहीं था····मैं तो दुनियादारी की बात कह रहा था····

(नगीना रोती रहती है ।)

(सांत्वना के स्वर में) नगीना ! सुनो तो····

(रोते-रोते नगीना अपने हाथों के बीच छुपे आँसुओं भरे मुखड़े को ऊपर उठाती है । मिर्ज़ा ने देखा नगीना की आँसू भरी आँखें रोने से लाल

नगीना : कोई भी नहीं जान पाएगा, मिर्जा साहब ! कि उस चिराग़ की रोशनी मेरी है····यकीन मानिए····

(मिर्जा स्तब्ध से खड़े एकटक दृष्टि से नगीना को देखते रहते हैं, नगीना भी। दोनों की दृष्टियाँ कुछ क्षण इसी प्रकार मिली रहती हैं।)

मिर्जा : पागल हो रही हो क्या, नगीना ? (रुककर) यह नहीं सोचा तुमने कि रोशनी तो फैल जाएगी मगर····

नगीना : (बात काटकर) मगर क्या ? (दृढ़ स्वर में) उस रोशनी को जलाने के लिए मैं जलूँगी····अपने हर रंग में ! (रुककर) जलती रहूँगी····जब तक सहर नहीं आ जाएगा····

(भावावेश में नगीना गुनगुनाने लगती है)

'शमा हर रंग में जलती है, सहर होने तक।'

मिर्जा : नहीं····नहीं, नगीना ! ऐसा नहीं हो सकता····

नगीना : हो सकता है····क्यों नहीं हो सकता ?

(नगीना उठकर खिड़की के पास जा खड़ी होती है, जहाँ से बाहर का दृश्य दीख पड़ता है।)

मिर्जा : मैं इतना खुदगर्ज नहीं बन सकता, नगीना !

(भारी कदमों से मिर्जा नगीना की पीठ की ओर बढ़ते हैं तथा नज़दीक जाकर रुक जाते हैं।)

(नगीना के कन्धे पर हाथ रखते हुए) मैं नहीं चाहता कि तुम्हें जलाकर तुम्हारी जलन से मैं अपना अंधेरा मिटा लूँ····(सावेश) नहीं····नहीं, नगीना। और फिर····

(मिर्जा के वाक्य पूर्ण करने से पूर्व सहसा नगीना पलटती है। मिर्जा कहते कहते रुक

जाते हैं ।)

नगीना : ग्रौर क्या ? कहिए न····चुप क्यों हो गए ?

मिर्जा : (भारी मन से) कुछ नहीं····

नगीना : कुछ तो है ही ! ग्राप मुझसे कुछ छुपा रहे हैं····
(आग्रहपूर्वक) बतलाइए····

(मिर्जा की दृष्टि अपने बहुत पास खड़ी नगीना पर जमी रहती है ।)

मिर्जा : तुम····(अटक जाते हैं ।)

नगीना : कहिए न !

मिर्जा : (संकोच भरे स्वर में) तुम····(अटकते हुए) तवायफ़ हो (रुककर) एक तवायफ़ की ग्रौलाद····

नगीना : (तीव्र स्वर में) मिर्जा साहब····

(एक तेज धमाका । हलचल भरा संगीत उभरता है, जो मिर्जा तथा नगीना के मन के तीव्र उद्वेलन को प्रकट करता है । नगीना की खूबसूरत आँखों में आँसू उमड़ आते हैं । वह दोनों हाथों से मुँह छिपाकर सिसक उठती है ।)

(रोते हुए) मिर्जा साहब ! (सिसकती हुई) मैं पेशे से तवायफ़ हूँ···दिल से नहीं····

(नगीना फफक-फफककर रो पड़ती है ।)

मिर्जा : अरे····नगीना····! मेरा मक़सद यह नहीं था····मैं तो दुनियादारी की बात कह रहा था····

(नगीना रोती रहती है ।)

(सांत्वना के स्वर में) नगीना ! सुनो तो····

(रोते-रोते नगीना अपने हाथों के बीच छुपे आँसुओं भरे मुखड़े को ऊपर उठाती है । मिर्ज़ा ने देखा नगीना की आँसू भरी आँखें रोने से लाल

हो चुकी थीं। उन आँखों में छुपी पीड़ा और वेवसी ने मन को पिघला दिया।)

नगीना : (सिसकियों के बीच) आपने औरत को शायद समझा नहीं है, मिर्जा साहब ! (रुककर) मेरी ज़िन्दगी की थोड़ी-सी रोशनी और उसकी जलन अगर आपको उजाला दे सके तो मैं अपने को बहुत खुशनसीब समझूंगी····

(गम्भीर वाद्य स्वर निनादित होते हैं।)

मिर्जा : (नगीना के कंधे पर हाथ रखते हुए) नगीना····

(नगीना फिर सिसक उठती है।)

लेकिन वह रोशनी उजाला देने के साथ-साथ आग भी तो लगा सकती है, यह क्यों भूलती हो, नगीना !

नगीना : मेरे जलने से अगर आपका खान्दान रौशन हो जाए तो मुझे जलने का बिल्कुल भी रंज न होगा····

मिर्जा : (आवेश में आकर) नहीं····नहीं····यह नहीं हो सकता ! (रुककर) अपनी आग में मैं खुद ही जलूंगा ····मुझे ही जलना होगा····

(भावावेश में मिर्जा बाहर जाने के लिए दरवाज़े की ओर बढ़ते हैं।)

नगीना : जाइए मत, मिर्जा साहब !

(मिर्जा फिर भी आगे बढ़ते रहते हैं।)

सुनिए तो····

(मिर्जा एक क्षण के लिए रुकते हैं।)

मिर्जा : (पलटकर) तुमने मेरे दिल में एक तूफ़ान उठा दिया है, नगीना ! जिसे मैं झेल नहीं सकता····(रुककर)

दरिया में खेलती मौज़ों को तुमने झकझोर कर रख दिया है····

(हलचल भरा संगीत उभरता है।)

मैं जा रहा हूँ····

नगीना : सुनिए तो····

(मिर्जा पागल से आवेश में भरे नगीना की पुकार को अनसुना कर तेजी से बाहर निकल गए। नगीना ठगी-सी खड़ी देखती रह जाती है।)

(हाँफती हुई) चले गए····? (रुककर) शमा को जलने से कोई नहीं रोक सकता···वह जलेगी····और जरूर जलेगी····(निश्वास लेकर) शमा हर रंग में जलती है, सहर होने तक।

(वातावरण अत्यधिक गम्भीर हो जाता है। उदास-सी नगीना खिड़की के बाहर दूर-दूर तक विखरी इमारतों के वीच खड़ी ऊँची-ऊँची मीनारों को देखने लगती है।) ● ●

अंक : तीन

स्थान : मिर्जा ग़ालिब की बैठक

(लगभग आधी रात का समय । सब ओर चुप्पी बिखरी है । मिर्जा ग़ालिब की बैठक साधारण ढ़ंग से जमी हुई है । बैठक की एक खिड़की गली की ओर खुलती है, जिसमें से दूर तक बेतरतीब-से खड़े मकानों के बीच साँप-सी लेटी गली क़ासिम जॉन दीख पड़ती है । खिड़की के बाहर चाँदनी से सब कुछ नहाया हुआ लगता है । चाँदनी की एक लम्बी किरण तिरछी होकर बैठक में खिड़की के रास्ते आ गई है, जो खिड़की के पास बिछे तख्त की सफेद चादर पर चमक रही है । तख्त पर एक लम्बी और ऊँची मसनद रखी है, जिस पर मिर्जा अधलेटे-से टिके हैं ।

मिर्जा ग़ालिब का चेहरा बुढ़ापे से भर चुका है । चेहरे पर चमक आई अनेक आड़ी-तिरछी झुर्रियों तथा जीवन की आपत्तियों ने मिलकर मिर्जा को बिल्कुल बदल डाला है । मिर्जा के सामने ही आँगन में हुक्का रखा हुआ है, जो क़रीब-क़रीब बुझ चुका है ।

बैठक में मोमबत्तियों की हल्की रोशनी बिखरी है। शान्त वातावरण में कभी-कभी दूर 'जागते रहो' तथा कुत्तों के भौंकने की आवाजें सुनाई दे जाती हैं। बीच-बीच में हवा की सरसराहट भी सुन पड़ती है। कुछ क्षण चुप्पी रहती है। मिर्जा किसी गहरी चिन्ता में डूबे हैं। रह-रहकर उनकी दृष्टि खिड़की से बाहर बिखरे संसार तथा उस पर बिछी चाँदनी की भीनी चादर पर पड़ जाती है।

कुछ क्षण की चुप्पी के उपरान्त मिर्जा एक लम्बी निश्वास लेते हैं, जिससे उन्हें खाँसी आ जाती है।)

मिर्जा : (खाँस चुकने पर) यह सन्नाटा····यह अंधेरे से भरी दम घोंट देने वाली खामोशी कितनी खौफ़नाक है? लगता है—सारी हलचल, सारी खुशियाँ, सारी मस्ती को इसने बेरहम होकर निगल लिया है। सभी कुछ बदल गया है····(रुककर) मैं भी तो बदल गया हूँ····बूढ़ा हो गया हूँ। लिखता हूँ तो अंगुलियाँ काँपने लगती हैं। अब और बदकिस्मती के अंधेरे सायों की पर्तें इतनी जम चुकी हैं कि अब हटाए हटती नहीं।

(एक क्षण का सन्नाटा। कुत्तों के भौंकने की आवाज़ें।)

(निश्वास लेकर) आसमान में चांद कितनी खूबसूरती से चमक रहा है। सभी कुछ रौशन हो रहा है। (रुककर) हमारी ज़िन्दगी में भी एक चाँद उगा था। हमने चाहा था—वह हमेशा-हमेशा इसी

तरह चमकता रहे, मगर वक्त को यह नहीं सुहाया। उसकी ठोकर से बदकिस्मती की गहरी और काली स्याही लुढ़की तो सब ओर अन्धेरा ही अंधेरा फैल गया। सफेदी स्याह होकर हमारे चारों ओर बिखर गई, जिससे घिरकर हमसे हमारा रास्ता छिन गया....

(पार्श्व में गम्भीर वाद्य-ध्वनियाँ उठती हैं—गिरती हैं।)

उस अंधेरे के लिए एक रौशन चिराग़ की तमन्ना की थी हमने। न जाने कितनी-कितनी हसीन बातों को सोच डाला था, कितने-कितने सपने एक साथ देख डाले थे।

(सन्नाटा छा जाता है।)

यह दूर-दूर तक बने ऊँचे-नीचे मकानों से घिरी वही गली कासिम जान है, जहाँ हम दुल्हा बनकर उमराव बेगम को ब्याहने आए थे। उमराव को पाकर हमने सोचा—मानो हमें सब कुछ मिल गया....(निश्वास लेकर) पर किसे मालूम था कि ज़िन्दगी का यह हसीन मोड़ हमारे साथ एक बहुत बड़ा मज़ाक था। हम सब कुछ भूलकर उसे अपना—सिर्फ़ अपना मान बैठे थे।

(सहसा पार्श्व में दूर कहीं 'जागते रहो' की आवाज़ उठती है, जिसके तुरन्त बाद ही कुछ कुत्तों के भौंकने की मिली-जुली आवाज़ें भी सुनाई पड़ती हैं।)

हम ज़िन्दगी के सफ़र को खुशियों के साथ गुज़ार देना चाहते थे, मगर उमराव के दिल में भीतर

ही भीतर एक शोला सुलग रहा था। (रुककर) वह सुलगता रहा और बेगम उसकी आग में जलती रहीं ....उसने 'उफ्' तक नहीं की, बेरहम होकर अपने लब सी लिए....(निश्वास लेकर) आखिर यह सब कब तक चलता। एक दिन....एक दिन उस शोले ने हमारे चमन में आग लगा ही दी....

(उथल-पुथल की सूचक वाद्य-ध्वनियाँ)

वह शोला इस क़दर भड़का....कि हम लाख कोशिशों के बावजूद भी उस आग से अपने को और उमराव को बचा न सके। हमने ज़िन्दगी का सकून खोजना चाहा, मगर बदले में मिला एक तूफ़ान....! (रुककर) नगीना ने मेरे दिल में एक तूफ़ान उठा दिया, जिसे झेलना मेरे लिए आसान न था।

(हलचल भरा संगीत)

नगीना ने दरिया की मौज़ों को झकझोर कर रख दिया तो यह कैसे हो सकता था कि उस दरिया में तूफ़ान न आता। (रुककर) काले मियाँ के लड़का हुआ....बहुत जश्न रहा (निश्वास लेकर) मगर वह जश्न ही हमारे लिए तूफ़ान का सबब बन गया....

(झनझनाहट भरी वाद्य-ध्वनियाँ)

(फ्लेश बैक—फेड इन)

(शान्त वातावरण में उमराव बेगम की सिसकियाँ सुनाई पड़ती हैं।)

मिर्जा : तुम रो रही हो, उमराव ! क्या बात है ?

(उत्तर में उमराव की सिसकियाँ और भी करुण

हो जाती हैं ।)

बोलो, उमराव !

उमराव : (सिसकती हुई) कुछ नहीं····मैं मर जाना चाहती हूँ····! अब और ज़िन्दा नहीं रह सकती····(भरे कण्ठ से) नहीं रह सकती····

(विलख पड़ती है । पार्श्व में गम्भीर वाद्य-स्वर उठते हैं—गिरते हैं ।)

मिर्जा : (भीगे कण्ठ से) उमराव ! (सोचते हुए) समझा···· काले मियाँ के बच्चे को देखकर····उस घर की खुशियों को देखकर तुम्हें अपनी गोदी का सूना अंधेरा याद हो आया····क्यों न ?

(उमराव विलख पड़ती है ।)

(करुण होकर) बोलो, उमराव ! अपने मुँह से अपने दिल का दर्द कह दो····(रुककर) कह देने से दिल का बोझा कुछ हल्का हो जाता है ।

(उमराव की सिसकियां भावावेश में और भी तेज हो जाती हैं । वह अपनी दोनों हथेलियों में मुँह छिपाए सिसकती रहती है ।)

बोलो उमराव ! तुम्हें हमारी कसम, जो कुछ भी छुपाया····

(तेज सिसकियाँ)

उमराव : (सिसकियों के बीच सहसा मुँह हथेलियों से उठाकर) नहीं····नहीं, कसम मत दीजिए ! सुनकर आपको धक्का ही लगेगा····

मिर्जा : बोलो, उमराव ! हम सब कुछ सुनने को तैयार हैं····(रुककर) ज़िन्दगी भर तल्खियों को पीते-पीते हमारी आदत पड़ गई है ।

(गम्भीर वाद्य ध्वनियाँ)

उमराव : (सिसकियों के साथ) औरत कभी अपने दिल के दर्द को नहीं खोलती....। वह ज़िन्दगी भर अपने लब सीकर, बिना उफ् किए सब कुछ पी जाती है.... लेकिन....(आवेश में भरकर) यह चोट....यह चोट मैं नहीं सह सकती....

(सिसकियाँ)

मिर्ज़ा : (चौंककर) चोट....? कैसी चोट ? (उत्सुकता भरे स्वर में) उमराव....खुदा के लिए अब और पहेलियाँ मत बुझाओ....सब कुछ साफ-साफ कह दो....

(उमराव की सिसकियाँ एक क्षण के लिए रुक जाती हैं। आवेश की अधिकता के कारण उसके चेहरे पर एक निष्ठुरतापूर्ण दृढ़ता की चमक उभर आती है।

उमराव : (स्वर को कठोर बनाने का प्रयत्न करते हुए) सुन सकेंगे ?

(उमराव एकटक मिर्ज़ा के चेहरे पर अपनी बात की प्रतिक्रिया जानने के लिए दृष्टि गड़ा देती है।)

मिर्ज़ा : मैंने अपने दिल को पत्थर बना डाला है, बेगम !

उमराव : (आवेश में) क्या यह बर्दाश्त कर सकेंगे कि भरी मज़लिस में उमराव को बे-औलाद कहकर बे-इज्ज़त किया जाए....(तेज स्वर में) उसकी मज़-बूरियों के घावों को कुरेदकर उसे लहू-लुहान बना दिया जाय....(स्वर तेज हो जाता है) क्या यह क़ाबिले-बर्दाश्त होगा कि....

(गम्भीर स्वर लहरियाँ वातावरण को और भी

हो जाती हैं ।)

बोलो, उमराव !

उमराव : (सिसकती हुई) कुछ नहीं····मैं मर जाना चाहती हूँ····! अब और ज़िन्दा नहीं रह सकती····(भरे कण्ठ से) नहीं रह सकती····

(विलख पड़ती है । पार्श्व में गम्भीर वाद्य-स्वर उठते हैं—गिरते हैं ।)

मिर्जा : (भीगे कण्ठ से) उमराव ! (सोचते हुए) समझा···· काले मियाँ के बच्चे को देखकर····उस घर की खुशियों को देखकर तुम्हें अपनी गोदी का सूना अंधेरा याद हो आया····क्यों न ?

(उमराव विलख पड़ती है ।)

(करुण होकर) बोलो, उमराव ! अपने मुँह से अपने दिल का दर्द कह दो····(रुककर) कह देने से दिल का बोझा कुछ हल्का हो जाता है ।

(उमराव की सिसकियां भावावेश में और भी तेज हो जाती हैं । वह अपनी दोनों हथेलियों में मुँह छिपाए सिसकती रहती है ।)

बोलो उमराव ! तुम्हें हमारी कसम, जो कुछ भी छुपाया····

(तेज सिसकियाँ)

उमराव : (सिसकियों के बीच सहसा मुँह हथेलियों से उठाकर) नहीं····नहीं, कसम मत दीजिए ! सुनकर आपको धक्का ही लगेगा····

मिर्जा : बोलो, उमराव ! हम सब कुछ सुनने को तैयार हैं····(रुककर) ज़िन्दगी भर तल्खियों को पीते-पीते हमारी आदत पड़ गई है ।

(गम्भीर वाद्य ध्वनियाँ)

उमराव : (सिसकियों के साथ) औरत कभी अपने दिल के दर्द को नहीं खोलती····। वह ज़िन्दगी भर अपने लब सीकर, बिना उफ् किए सब कुछ पी जाती है···· लेकिन····(आवेश में भरकर) यह चोट····यह चोट मैं नहीं सह सकती····

(सिसकियाँ)

मिर्जा : (चौंककर) चोट····? कैसी चोट ? (उत्सुकता भरे स्वर में) उमराव····खुदा के लिए अब और पहेलियाँ मत बुझाओ····सब कुछ साफ-साफ कह दो····

(उमराव की सिसकियाँ एक क्षण के लिए रुक जाती हैं। आवेश की अधिकता के कारण उसके चेहरे पर एक निष्ठुरतापूर्ण दृढ़ता की चमक उभर आती है।

उमराव : (स्वर को कठोर बनाने का प्रयत्न करते हुए) सुन सकेंगे ?

(उमराव एकटक मिर्जा के चेहरे पर अपनी बात की प्रतिक्रिया जानने के लिए दृष्टि गड़ा देती है।)

मिर्जा : मैंने अपने दिल को पत्थर बना डाला है, बेगम !

उमराव : (आवेश में) क्या यह बर्दाश्त कर सकेंगे कि भरी मज़लिस में उमराव को बे-औलाद कहकर बे-इज्ज़त किया जाए····(तेज स्वर में) उसकी मज-बूरियों के घावों को कुरेदकर उसे लहू-लुहान बना दिया जाय····(स्वर तेज हो जाता है) क्या यह क़ाबिले-बर्दाश्त होगा कि····

(गम्भीर स्वर लहरियाँ वातावरण को और भी

हो जाती हैं ।)

बोलो, उमराव !

उमराव : (सिसकती हुई) कुछ नहीं····मैं मर जाना चाहती हूँ····! अब और जिन्दा नहीं रह सकती····(भरे कण्ठ से) नहीं रह सकती····

(विलख पड़ती है । पार्श्व में गम्भीर वाद्य-स्वर उठते हैं—गिरते हैं ।)

मिर्जा : (भीगे कण्ठ से) उमराव ! (सोचते हुए) समझा···· काले मियाँ के बच्चे को देखकर····उस घर की खुशियों को देखकर तुम्हें अपनी गोदी का सूना अंधेरा याद हो आया····क्यों न ?

(उमराव विलख पड़ती है ।)

(करुण होकर) बोलो, उमराव ! अपने मुँह से अपने दिल का दर्द कह दो····(रुककर) कह देने से दिल का बोझा कुछ हल्का हो जाता है ।

(उमराव की सिसकियां भावावेश में और भी तेज हो जाती हैं । वह अपनी दोनों हथेलियों में मुँह छिपाए सिसकती रहती है ।)

बोलो उमराव ! तुम्हें हमारी कसम, जो कुछ भी छुपाया····

(तेज सिसकियाँ)

उमराव : (सिसकियों के बीच सहसा मुँह हथेलियों से उठाकर) नहीं····नहीं, कसम मत दीजिए ! सुनकर आपको धक्का ही लगेगा····

मिर्जा : बोलो, उमराव ! हम सब कुछ सुनने को तैयार हैं····(रुककर) ज़िन्दगी भर तल्खियों को पीते-पीते हमारी आदत पड़ गई है ।

(गम्भीर वाद्य ध्वनियाँ)

उमराव : (सिसकियों के साथ) औरत कभी अपने दिल के दर्द को नहीं खोलती····। वह ज़िन्दगी भर अपने लब सीकर, विना उफ् किए सब कुछ पी जाती है···· लेकिन····(आवेश में भरकर) यह चोट····यह चोट मैं नहीं सह सकती····

(सिसकियाँ)

मिर्जा : (चौंककर) चोट····? कैसी चोट ? (उत्सुकता भरे स्वर में) उमराव····ख़ुदा के लिए अब और पहेलियाँ मत बुझाओ····सब कुछ साफ-साफ कह दो····

(उमराव की सिसकियाँ एक क्षण के लिए रुक जाती हैं। आवेश की अधिकता के कारण उसके चेहरे पर एक निष्ठुरतापूर्ण दृढ़ता की चमक उभर आती है।

उमराव : (स्वर को कठोर बनाने का प्रयत्न करते हुए) सुन सकेंगे ?

(उमराव एकटक मिर्जा के चेहरे पर अपनी वात की प्रतिक्रिया जानने के लिए दृष्टि गड़ा देती है।)

मिर्जा : मैंने अपने दिल को पत्थर बना डाला है, बेगम !

उमराव : (आवेश में) क्या यह वर्दाश्त कर सकेंगे कि भरी मज़लिस में उमराव को बे-औलाद कहकर बे-इज्ज़त किया जाए····(तेज स्वर में) उसकी मजबूरियों के घावों को कुरेदकर उसे लहू-लुहान बना दिया जाय····(स्वर तेज हो जाता है) क्या यह क़ाबिले-बर्दाश्त होगा कि····

(गम्भीर स्वर लहरियाँ वातावरण को और भी

उत्तेजनापूर्ण बना देती हैं। अत्यधिक आवेश के कारण उमराव की सांस फूल जाती है।)

मिर्जा : (बात काटकर) बस....बस करो, उमराव ! अब और कुछ न सुन सकूँगा....

.... (हलचल भरा संगीत पार्श्व में चलता रहता है।)

उमराव : (रोती हुई) तो फिर अपने इन्हीं हाथों से मेरा गला घोंट डालिए....मार डालिए....ताकि इस ख़ान्दान में फैला हुआ अन्धेरा रोका जा सके। शहनाइयों की मीठी गूँज के बीच ख़ान्दान के चिराग़ को हासिल करने के नए सामान दोबारा संजोए जा सकें। (सिसकते हुए) मुझे मार दीजिए.... ख़ुदा के लिए मुझे मार दीजिए....

(फूट-फूट कर रो पड़ती है। गम्भीर वाद्य स्वर।)

मिर्जा : उमराव....

(संघर्ष की सूचक वाद्य ध्वनियाँ तेज होती हैं।)

(रुँधे कण्ठ से) या ख़ुदा....मैं क्या करूँ ? बद-नसीबी के इस गहरे अन्धेरे में डूबने से कैसे बचाऊँ उमराव को....अपने ख़ान्दान को ! (रुककर भर्राए स्वर में) उफ्....यह अन्धेरा मुझे भी निगल लेना चाहता है। यह अन्धेरा एक काला नाग बनता जा रहा है....इस अन्धेरे को कैसे मिटाया जाय....

(संगीत की विभिन्न ध्वनियाँ। झनझनाहट में स्मृतियों के तार झंकृत होते हैं। मिर्जा के मन में आवेश का तूफान उठता है। वे दीवार से पीठ टिकाकर निढ़ाल से टिक जाते हैं। आवेश में नेत्र बन्द हो जाते हैं। मिर्जा की कल्पना में नगीना की कही हुई बातें गूँज-गूँज उठती हैं)

"........सरकार ! मैं ज़िन्दगी का हर खुशनसीब ख़्वाब देकर भी आपकी सारी मजबूरियाँ खरीद लूंगी ।"

(झनझनाहट)

"........मैंने अभी कहा न कि शमा का जलते रहना ही परवाने की जलनभरी बेक़रारी का इलाज़ बन जाता है ।"

(झनझनाहट)

"........मिर्जा साहब !....आपको खान्दान के अन्धेरे के लिए चिराग चाहिए....(रुककर) वह मैं देने को तैयार हूँ ।"

(झनझनाहट)

"........कोई भी नहीं जान पाएगा, मिर्जा साहब ! कि उस चिराग की रोशनी मेरी है.... यकीन मानिए...."

(झनझनाहट)

"........उस रोशनी को जलाने के लिए मैं जलूंगी ....अपने हर रंग में । (रुककर) जलती रहूंगी....जब तक सहर नहीं आ जाएगा ।"

(तीव्र हलचल तथा झनझनाहट)

"........(सिसकियों के बीच) आपने औरत को शायद समझा नहीं है, मिर्जा साहब ! (रुककर) मेरी ज़िन्दगी की थोड़ी सी रोशनी और उसकी जलन अगर आपको उजाला दे सके तो मैं अपने को बहुत खुशनसीब समझूँगी ।"

(तेज झनझनाहट की ध्वनि, जिसमें नगीना के

कहे हुए विभिन्न शब्द टूट-टूटकर बिखरते से प्रतीत होते हैं। इसी के समानान्तर मिर्जा की कल्पना में उमराव की आवाज़ें भी उठती-गिरती हैं।)

"........यह अकेला-सूना घर हमें काटने को दौड़ता है (खीझकर) यहाँ कहीं कोई हलचल नहीं.... कोई शोर-शरावा नहीं....किसी की ज़िद्द नहीं....किसी की किलकारी (चौंककर) उई अल्ला...."

(झनझनाहट)

"........(रोती हुई)यह क़ैदखाने की-सी ऊँची-ऊंची दीवारें....यह अन्धेरे से लिपटी हुई घुटन भरी ज़िन्दगी....गहरा सन्नाटा।"

(झनझनाहट)

"........जिस ओर देखती हूँ—नज़रें खाली-खाली ही सामने से लौटकर फिर मेरे पास चली आती हैं। मेरी आवाज़ें अपनी ही गूंज से टकरा-टकरा कर खुश हो लेती हैं....मैं कितनी ख़ुशनसीब हूँ....कितनी खुशनसीब...."

(तीव्र झनझनाहट तथा सिसकियाँ। अत्यधिक आवेश में मिर्जा दोनों हाथों से कानों को भींच लेते हैं। चेहरे पर पसीना छलछला आता है। हलचल भरा संगीत।)

मिर्जा : (करुण स्वर में) ओह....यह आवाज़ें मेरे कानों को फाड़े डाल रही हैं। ज़िन्दगी की यह तल्खियाँ मेरा बुरी तरह पीछा कर रही हैं....। क्या करूँ....

क्या न करूँ....

(दीवार से सिर टिकाकर अपनी दृष्टि शून्य में गड़ाते हुए मानो मिर्जा कुछ खोजने का प्रयत्न करते हैं।)

(सोचते हुए) समझा....लोहे को लोहे से ही काटना होगा....कड़वाहट को कड़वाहट में डूबोकर ख़त्म कर देना होगा....

(आवेश में वे तेजी से पास ही बिछे तख्त पर धम्म से बैठ जाते हैं तथा ताक में रखी सुराही से शराब ऊँडेल कर प्याला भर लेते हैं।

(हाथ के प्याले में भरी शराब को देखते हुए) शराब की कड़वाहट ज़िन्दगी की सारी कड़वाहटों को मिटा देगी ...

(एक ही साँस में प्याला खाली कर दूसरा भर लेते हैं।)

इस मर्ज़ का यही इलाज़ है....

(सहसा झनझनाहट भरा संगीत उठता है, जिसमें मिर्जा की कल्पना में नगीना की आवाज़ें फिर से टकराने लगती हैं—)

"........शमा जलेगी....आपकी नस-नस में समाए हुए बदनसीबी के उस गहरे अन्धेरे को मिटाने के लिए शमा को जलना होगा।"

(झनझनाहट)

"........मिर्जा साहब ! आपको खान्दान के अन्धेरे के लिए चिराग चाहिए....वह मैं देने को तैयार हूँ।"

(झनझनाहट)

"........मगर क्या ? उस रोशनी को जलाने के लिए मैं जलूंगी....अपने हर रंग में जलती रहूँगी....जब तक सहर नहीं आ जाएगा।"
(झनझनाहट)

"........(रोते हुए) मैं पेशे से तवायफ़ हूँ, दिल से नहीं।....मेरी ज़िन्दगी की थोड़ी-सी रोशनी अगर आपको उजाला दे सके तो मैं अपने को बहुत खुशनसीब समझूंगी।"

(तेज झनझनाहट तथा हलचल भरा संगीत मिर्जा के मन की उथल-पुथल को प्रकट करता है।)

मिर्जा : (हाँफते हुए स्वर में) एक अजीब-सी प्यास मेरे सीने में सुलग उठी है....ओह....खुश्की....

(मिर्जा का काँपता हुआ हाथ अपने गले और छाती को सहलाने लगता है।)

(सोचते हुए) इसे मिटाने के लिए कुछ जाम और पीने पड़ेंगे....शायद यह प्यास बुझ जाए....

(मिर्जा सुराही से प्याला भरते हैं। ऐसा करते समय नशे एवं आवेश के कारण हाथ की सुराही काँपती रहती है, जिससे शराब का कुछ अंश प्याले से बाहर भी ढुलक जाता है।)

मिर्जा : (एक घूँट पीकर) इससे भी कोई फायदा नहीं....

(एक ही साँस में प्याला खाली कर रख देते हैं।)

(जायका लेते हुए) इससे कुछ सकून जरूर मिला है....लेकिन....(सोचते हुए) यह कैसा सकून है, जिसके पीछे एक अजीब-सी जलन छुपी हुई है....

(रुककर) समझा····जो आग अभी-अभी सुलग चुकी है, उसे अचानक बुझा देने से दिल में जख्म बन गए हैं····वे ही जलन कर रहे हैं····

(गम्भीर वाद्य ध्वनियाँ पार्श्व में चलती रहती हैं।)

(भर्राए स्वर में) लेकिन अब तो एक ही रास्ता रह गया है····सिर्फ एक ही रास्ता—नगीना।····

(हलचल भरा संगीत)

(फुसफुसाते हुए) मैं जाऊँगा·······मुझे जाना ही होगा····

(उमराव अपने मन की पीड़ा भूलकर आश्चर्य के भाव लिए मिर्जा को देखती रह जाती है।)

उमराव : क्या बात है ? कहाँ जाएँगे आप····? कहाँ जाना होगा आपको ?

मिर्जा : (आवेश में भरकर) मुझे मत रोको, उमराव ! अब मुझे जाना ही होगा····तुम्हें इस अन्धेरे से बचाने के लिए मैं जाऊँगा····(दृढ़ स्वर में) अब मैं और नहीं रुक सकता····

(आवेश में मिर्जा तख्त से उठकर तेजी से उसी स्थिति में बाहर की ओर जाने का उपक्रम करते हैं।)

(बड़बड़ाते हुए) नहीं रुक····सकता····

(उमराव फुर्ति से आगे बढ़कर मिर्जा की बाँह थामकर रोकने की चेष्टा करती है।)

उमराव : सुनिए तो····

मिर्जा : (आवेश में) नहीं····नहीं····अब मैं नहीं रुक सकता····

(आवेश में उमराव का हाथ झटककर आगे बढ़

जाते हैं। उमराव रोकने का प्रयत्न करती रह जाती है। तेज हलचल भरी संगीत ध्वनियों में उमराव की आवाज़ खो जाती है।)

(फेड आउट)

(फिर वही आधी रात का सन्नाटा। वही कुत्तों के भौंकने व 'जागते रहो' की आवाज़ें। विचार मग्न मिर्जा का सिर खिड़की की चौखट से टिक जाता है।)

मिर्जा : (एक लम्बी श्वास लेकर) उमराव को उस अन्धेरे में डूबने से बचाने के लिए जाना ही था....(रुककर) मैं गया। नगीना के खानदान का चिराग़ हासिल करने के लिए आखिर मुझे जाना ही पड़ा........ (रुककर) मगर....मेरे पहुँचने से पहले ही बदनसीबी का बेरहम अन्धेरा वहाँ भी बिखर गया! उसने उम्मीद की रही-सही उस रोशनी को भी निगल लिया....

(झनझनाहट भरा संगीत)

(फ्लेश बैक—फेड इन)

(शून्य वातावरण।)

नूर : इधर से चले आइए, जनाब मिर्जा साहब!

(मिर्जा भारी मन से नूर के पीछे-पीछे आगे बढ़ते हैं।)

मिर्जा : (इधर-उधर दृष्टि डालते हुए) मैं कुछ नहीं समझ पा रहा हूँ, नूर! यह सन्नाटा....चारों ओर बिखरा घना अन्धेरा....(रुककर) ये छोटी-छोटी मोमबत्तियां अपनी धुंधली रोशनी की आँखों से टुकुर-टुकुर ताक रही हैं....

(सहसा अन्धेरे में मिर्जा को ठोकर लगती है, जिससे कोई चीज 'झन्न' की आवाज़ कर उठती है।)

(चौंककर) यह क्या·······नूर ! (गौर से देखते हुए) सितार···· ? यहाँ···रास्ते में लावारिश-सा पड़ा है····(सोचते हुए) यह सब क्या हो रहा है···· ! (खीझ भरे स्वर में) नगीना आखिर कहाँ है ?

(नूर खामोशी से खड़ी है। जैसे ही मिर्जा प्रश्न पूछते हैं, वह आगे बढ़ जाती है ।)

आज मुझसे इस तरह पहेलियाँ क्यों बुझाई जा रही हैं ? (रुककर) नगीना, तुम साफ़ साफ़ क्यों नहीं बतलाती····

नूर : (चलती हुई) जी····सो रही हैं····

(नूर कमरे के द्वार पर एक क्षण के लिए ठिठक जाती है, फिर बन्द द्वार को भीतर की ओर ठेलते हुए कहती है ।)

आइए····भीतर चले आइए····

(खामोशी भरे वातावरण में मिर्जा उदास मन व भारी कदमों से भीतर प्रवेश करते हैं। भीतर भी वैसी ही खामोशी व धुंधली रोशनी बिखरी पड़ी है। शमादान में मोमबत्तियों की लौ स्थिर भाव से खड़ी हैं। नूर एक पलंग के पास जाकर रुक जाती है, जो कपड़े से ढका हुआ है।)

मिर्जा : (पलंग की ओर देखते हुए) नगीना····

(उत्तर में चुप्पी)

(मीठे स्वर में) नगीना····(रुककर) देखो····मैं आया

जाते हैं। उमराव रोकने का प्रयत्न करती रह जाती है। तेज हलचल भरी संगीत ध्वनियों में उमराव की आवाज़ खो जाती है।)

(फेड आउट)

(फिर वही आधी रात का सन्नाटा। वही कुत्तों के भौंकने व 'जागते रहो' की आवाज़ें। विचार मग्न मिर्जा का सिर खिड़की की चौखट से टिक जाता है।)

मिर्जा : (एक लम्बी श्वास लेकर) उमराव को उस अन्धेरे में डूबने से बचाने के लिए जाना ही था....(रुककर) मैं गया। नगीना के खानदान का चिराग़ हासिल करने के लिए आखिर मुझे जाना ही पड़ा........ (रुककर) मगर....मेरे पहुँचने से पहले ही बदनसीबी का बेरहम अन्धेरा वहाँ भी बिखर गया ! उसने उम्मीद की रही-सही उस रोशनी को भी निगल लिया....

(झनझनाहट भरा संगीत)

(फ्लेश बैक—फेड इन)

(शून्य वातावरण।)

नूर : इधर से चले आइए, जनाब मिर्जा साहब !

(मिर्जा भारी मन से नूर के पीछे-पीछे आगे बढ़ते हैं।)

मिर्जा : (इधर-उधर दृष्टि डालते हुए) मैं कुछ नहीं समझ पा रहा हूँ, नूर ! यह सन्नाटा....चारों ओर बिखरा घना अन्धेरा....(रुककर) ये छोटी-छोटी मोमबत्तियां अपनी धुंधली रोशनी की आँखों से टुकुर-टुकुर ताक रही हैं....

(सहसा अन्धेरे में मिर्जा को ठोकर लगती है, जिससे कोई चीज 'झन्न' की आवाज़ कर उठती है ।)

(चौंककर) यह क्या········नूर ! (गौर से देखते हुए) सितार···· ? यहाँ···रास्ते में लावारिश-सा पड़ा है····(सोचते हुए) यह सब क्या हो रहा है···· ! (खीझ भरे स्वर में) नगीना आखिर कहाँ है ?

(नूर खामोशी से खड़ी है। जैसे ही मिर्जा प्रश्न पूछते हैं, वह आगे वढ़ जाती है ।)

आज मुझसे इस तरह पहेलियाँ क्यों बुझाई जा रही हैं ? (रुककर) नगीना, तुम साफ़ साफ़ क्यों नहीं बतलाती····

नूर : (चलती हुई) जी····सो रही हैं····

(नूर कमरे के द्वार पर एक क्षण के लिए ठिठक जाती है, फिर बन्द द्वार को भीतर की ओर ठेलते हुए कहती है ।)

आइए····भीतर चले आइए····

(खामोशी भरे वातावरण में मिर्जा उदास मन व भारी कदमों से भीतर प्रवेश करते हैं । भीतर भी वैसी ही खामोशी व धुंधली रोशनी बिखरी पड़ी है। शमादान में मोमवत्तियों की लौ स्थिर भाव से खड़ी हैं । नूर एक पलंग के पास जाकर रुक जाती है, जो कपड़े से ढ़का हुआ है ।)

मिर्जा : (पलंग की ओर देखते हुए) नगीना····

(उत्तर में चुप्पी)

(मीठे स्वर में) नगीना····(रुककर) देखो····मैं आया

हूँ –मिर्जा····(भारी कण्ठ से) नगीना····

(वही चुप्पी)

तुम मुझसे बोलती नहीं, नगीना ! (अधीर होकर) मैं जानता हूँ—तुम मुझसे खफा होगी····(रुककर) मगर आज मैं अपनी सारी गल्तियों की तलाफ़ी करने आया हूँ····

(पार्श्व में गम्भीर संगीत ध्वनियाँ चलती रहती हैं)

(गम्भीर स्वर में) तुमने मुझे एक रोशनी देने की बात कही थी····(भर्राए कण्ठ से) आज मैं तुमसे वही रोशनी मांगने आया हूँ····

(उत्तर में वही खामोशी।)

नगीना····(कण्ठ रुँध जाता है) मुझे माफ़ कर दो नगीना !

(वही चुप्पी)

(नूर से) नूर····क्या बात है ? नगीना····बोलती क्यों नहीं ?

नूर : जी····मैं जगाती हूँ !

(नूर पलंग की ओर बढ़ती है। वह फुर्ति से ढुलक आई आँसू की बूँदों को मिर्ज़ा की नज़र बचाकर पोंछ लेती है । मिर्जा विस्मयभरी दृष्टि पलंग की ओर गड़ाए रहते हैं। नूर पलंग पर का कपड़ा एक ओर हटा देती है। पलंग खाली पड़ा था।)

मिज : (चौंककर) नगीना····(भर्राए स्वर में) नूर····यह सब क्या है ? नगीना कहाँ है ?

नूर : (भीगे कण्ठ से) मिर्जा साहब····

(रोकते-रोकते भी बरबस नूर के मुँह से सिसकी फूट निकलती है। पर ओठों को दाँतों से दवाकर उमड़ी हुई रुलाई को रोकने का प्रयत्न करती है।)

मिर्जा : (मानो आकाश से गिरकर) नूर····

नूर : (सिसकियों के साथ) नगीना आपके नाम की रट लगाते-लगाते चली गई, मिर्जा साहब ! उसने खुदकशी कर ली····

मिर्जा : खुदकशी····? क्यों !

नूर : जाने क्यों !

मिर्जा : ओह····

(मिर्जा के मन में भयंकर उथल-पुथल मच जाती है। वे ठगे-से लुटे-पिटे राहगीर की भाँति पलंग का सहारा लेकर टिक जाते हैं। आवेश में नेत्र मुँद जाते हैं।)

(भीगे तथा भारी स्वर में) नगीना····मैंने तुम्हें पाकर भी खो दिया····(रुककर) नहीं जान पाया कि तुम कितना बेशकीमती नगीना थी। तुमने मुझे अपना नूर····अपनी चमक देनी चाही····मगर····मैं ही बदनसीब था····(सोचते हुए) बदनसीबी का वह गहरा अन्धेरा यहाँ भी चला आया····(निश्वास लेकर) या अल्लाह····

(गम्भीर संगीत-ध्वनियाँ पार्श्व में उठती-गिरती हैं, जो मिर्ज़ा के मन की हलचल एवं व्यथा को प्रकट करती है।)

(रुँधे गले से) देखो, नगीना ! तुमने एक दिन कहा था कि तुम इस दरिया की प्यास बुझा दोगी····

ज़िन्दगी की हसीन मौज उसे फिर से लौटा दोगी, मगर देखो....यह दरिया तुम्हारे दर पर अपनी कड़वाहटों भरी प्यास बुझाने आया था, पर अपनी सारी कड़वाहटों के साथ प्यासा ही लौट रहा है....

(हलचल भरा संगीत । फेड आउट)

(वही मिर्जा की बैठक । वही आधी रात का सन्नाटा । वही कुत्तों के भौंकने व 'जागते रहो' की आवाज़ें । कटु स्मृतियों के कारण मिर्जा के चेहरे पर पीड़ा की रेखाएँ उभर आईं ।)

मिर्जा : (भर्रायी आवाज़ में) वह प्यास अब अजीब रूप में सुलग उठी थी, जिसमें उमराव और मैं—दोनों ही जले जा रहे थे....(रुककर) दरिया में तूफ़ान पर तूफ़ान आते रहे। उससे बचने के लिए हमने आरिफ़ को गोद लिया....सोचा था....(लम्बी निश्वास लेकर) यह चिराग़ बनकर हमारे ख़ानदान में बिखरते हुए अन्धेरे को मिटा देगा....मगर.... (कातर कण्ठ से) किसे मालूम था कि ऐसा सोचना हमारी भूल थी....तक़दीर का एक और खौफ़नाक मज़ाक था हमारे साथ । वह मज़ाक भी ऐसा था, जिसने हमें बिल्कुल तोड़ कर रख दिया....

(गम्भीर वाद्य ध्वनियाँ)

उस तूफ़ान की तेज हवाओं ने ख़ान्दान के उस चिराग़ की जलती हुई लौ को बेरहम होकर निगल लिया....। (भर्रायी हुई आवाज़ में) टूटती हुई साँसों के बीच लड़खड़ाती उसकी वे आवाजें मैंने पत्थर बनकर सुनीं । वे आवाज़ें (आवेश में भरकर)

आज भी मेरे कानों में गूँज रही हैं, उसी तरह····

(झनझनाहट भरा संगीत, जिसमें मिर्जा की कल्पना में आरिफ़ के अन्तिम समय की टूटता आवाज़ें गूंज-गूंज उठती हैं।)

"········(लड़खड़ाते स्वर में) अब्बा····आह····मेरी आँखें····मुँदती जा रही हैं····कानों में···· सन्नाटा भरता जा रहा है····शरीर में जाने कैसी····कमजोरी····आ····ह····"

(झनझनाहट)

"········(हाँफते हुए) अब····अब कुछ नहीं हो सकता ····अम्मा ! आओ····एक बार मुझे···· अपने····सीने में भर लो····फिर····फिर यह गोद····नसीब····नहीं हो सकेगी····"

(झनझनाहट)

"········देखो····वो देखो····अम्मा ! वह मेरा इन्तज़ार कर रही है····(हाँफते हुए) अकेली ····वह परेशान हो रही होगी····(निश्वास लेकर) अब तो····मुझे जाना ही होगा···· अब मैं····और नहीं रुक सकता····"

(झनझनाहट)

"········तुम रो रही हो··· अम्मा !····(रुककर) अब्बा ····आप भी आँसू बहा रहे हैं····(हंसने का प्रयत्न करते हुए) मैं ·· मैं उसे लेकर····फिर लौट आऊँगा····जल्दी ही····! दूल्हा बनकर आऊँगा····! तुम मेरा····इन्तज़ार करोगी ····न····! अम्मा····(रुँधे कण्ठ से) अम्मा···· अब्बा····"

(एक तेज धमाके की आवाज़ के साथ आरिफ़ के स्वर डूब जाते हैं। हलचल भरा संगीत मुखर होता है।)

(फेड आउट)

(वही खामोशी से घिरी मिर्जा की बैठक। विचारों की कटुता से आहत होकर वे सिसक उठते हैं। उनके नेत्रों में आँसू झलमला उठते हैं।)

मिर्जा : (सिसकती आवाज में) मैंने सब कुछ देखा··· और चुपचाप सीने पर पत्थर रखकर अपने लबों को सीकर बैठ गया····(रुककर) क्या करता ! लोग कहते हैं कि 'ग़ालिब का है अन्दाज़े बयाँ और····' (निश्वास लेते हुए) वे आकर देखें—ग़ालिब के दिल का एक-एक कतरा जला पड़ा है। वह दिखाने के लिए हँसता है····दूसरों को हँसाने के लिए हँसता है····क़ह क़हे लगाता है····(धीमी और भीगी आवाज़ में) मगर दिल में रोता है····रोता ही रहता है····
"मारा ज़माने ने असद उल्लाह खाँ तुम्हें।
वह वलवले कहाँ ! वह जवानी किधर गयी।"

(आवेश में मिर्जा उठ खड़े होते हैं। भावुकता और स्मृतियों की तीखी कटुता से आहत होकर वे एक ओर बढ़ते हैं। सहसा रास्ते में पड़ी काँच की सुराही उनकी ठोकर से लुढ़ककर

---

१. इस सर्वान्तक-काल ने—मियाँ असद उ-ल्लाहत खाँ—तुम्हें समाप्त ही कर ड़ाला। कहाँ गया वह उफ़नाता यौवन, वह जोश, वह ज्वार ? आह !!

चूर-चूर हो जाती है। पास ही दूसरे तख़्त पर सोई उमराव बेगम चौंककर जाग उठती है। पागल की-सी मुद्रा में मिर्जा को खड़े देखकर वह स्तब्ध-सी रह जाती है। वह लपककर मिर्जा के पास पहुंचती है।)

उमराव : (विस्मय भरे स्वर में) अरे....आप ?....(भूमि पर सुराही के बिखरे टुकड़ों को देखकर) और....यह सुराही....?

मिर्जा : (स्वर बदल कर) कुछ नहीं, बेगम ! ठोकर लग गई थी....

उमराव : (मिर्जा के चेहरे को ग़ौर से देखते हुए) अभी तक आप सोये नहीं....?

मिर्जा : नींद ही नहीं आई....बेगम !

(एक क़दम आगे बढ़कर उमराव मिर्जा के झुके हुए कन्धे पर हाथ टिकाती है।)

उमराव : ओह....रात इतनी जा चुकी है....और (शब्दों पर जोर देते हुए) आपकी आँखों में नींद ही नहीं ?

मिर्जा : (मन की पीड़ा को छुपाने का प्रयास करते हुए स्वर बदलकर) हाँ.... (रुककर) जरा अच्छी-सी लौरी सुना दो....शायद आ जाए.... ।

(फीकी-सी हँसी हँसने का प्रयत्न करते हैं, पर स्वाभाविक रूप में हँस नहीं पाते।)

उमराव : (चौंककर) अरे....हँसते-हँसते आपकी आँखें भर आई....एक आँख से आँसू भी ढुलक आया.... (रुककर) आप मुझसे कुछ छुपाने की कोशिश कर रहे हैं....(खीझकर) समझी....(स्वर में मधुरता भरकर) मगर इस तरह ग़मगीन रहने से क्या होगा ?

(भीगे कण्ठ से) उस दिन के वाद आपने शतरंज को छुआ तक नहीं····! इस तरह मायूस क्यों होते हैं····मैं भी तो माँ हूँ····मुझे भी तो देखिए···· ।

(उमराव का स्वर दर्द से इतना भीग जाता है कि ऐसा लगता है, जैसे वह अव रोई····अव रोई ।)

मिर्जा : मायूस····? (निश्वास लेकर) उमराव····ज़िन्दगी में एक नहीं अनेक जलजले झेले हैं हमने ! मगर कभी झुकना नहीं जाना····(रुककर) मोमिन मरे···· इमामवख़्श सहवाई तोप से उड़ा दिए गए···· मयक़श की जान चली गई····आरज़ुदा को काला पानी दिया गया····(भीगी आवाज़ में) मुक़द्दर के संगदिल हाथों ने सभी को छीनकर हमें अकेला–बिल्कुल अकेला छोड़ दिया····। शतरंज के पिटे हुए मोहरे की तरह हम उसका शिकार बन गए···· मगर हम फिर भी नहीं झुके····। यह सब गम मिलकर भी ज़िन्दगी की हमारी हविस को न तोड़ सके····लेकिन····लेकिन····(भारी कण्ठ से) आरिफ़ ने हमें बिल्कुल तोड़कर रख दिया···· ।

(आवेश और व्यथा से घिरे मिर्जा पीठ के पीछे दोनों हाथ बाँधकर टहलने का उपक्रम करते हैं ।)

उमराव : (भारी स्वर में) अव जो भी है····उसे बर्दाश्त तो करना ही होगा····(रुककर) दरिया में तूफ़ान आता है और चला जाता है····मगर वह किनारों को नहीं तोड़ता····(रुककर) आप अब आराम कीजिए····चेहरे पर पसीना छलछला आया है····

कहीं तबियत खराब न हो जाए···· ।

मिर्जा : अब हम और बर्दाश्त नहीं कर सकते···· उमराव ! (टूटते-से स्वर में) हम भीतर ही भीतर खोखले होते जा रहे हैं···· ।

"ख़मोशी में निहाँ खूँगश्तः लाखों आरजूएँ हैं,
चिरागे मुर्दः हूं मैं बे ज़वाँ गोरे ग़रीबाँ का ।"[1]

(निश्वास लेकर) अब इस ज़िन्दगी में रह ही क्या गया है···· ।

(वीणा की गम्भीर टनटनाहट)

(भर्राई आवाज़ में) यहाँ दरिया····अपनी मौज़ों की कड़वाहट को मिटाकर अपने में मचलने वाले पानी से अपनी प्यास मिटाना चाहता था···· मगर····वह कड़वाहट न घटी····न मिटी···· (निश्वास लेकर) और दरिया की प्यास वैसी ही बनी रही···· ।

(गम्भीर संगीत-ध्वनियाँ उठती-गिरती हैं । पार्श्व में गालिब की यह पंक्तियाँ शून्यता में दूर-दूर तक गूँजती हैं—)

"कोई उम्मीद बर नहीं आती
कोई सूरत नज़र नहीं आती
मौत का एक दिन मुअइयन है
नींद क्यों रात भर नहीं आती ।"[2]

---

१. मेरे इस महामौन में लोहू-लिपटी लाखों लालसाएँ हैं । मैं कब्रिस्तान का बिना लौ का–जीभ रहित, वाणी-विरहित–मृत दीपक हूँ ।

२. न तो कोई आशा पूरी होती है और न आशा पूर्ण करने वाला कोई रूप ही नज़र आता है । कोई करे भी तो क्या ? मृत्यु का एक दिन जब सुनिश्चित है; तब, पता नहीं, सारी रात नींद क्यों नहीं आती ।

(हलचल पूर्ण गम्भीर संगीत-ध्वनियाँ पहले तेज़ होती हैं, फिर धीमी होने लगती हैं, जिनके पार्श्व से इन पंक्तियों की प्रतिध्वनियाँ देर तक गूँजती रहती हैं। मिर्जा आवेश में घूमते रहते हैं, बेगम उमराव पागलों की-सी मुद्रा में मूर्ति बनी खड़ी रहती है। हवा के झोंकों से खिड़की पर लगा परदा तेजी से हिल-हिल जाता है।)

• • •

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 39868
Date 21.6.72
SIMLA

Library IIAS, Shimla
H 812.8 P 217 P
00039868